आर्यभट्ट

विज्ञान - पत्रिका

अप्रैल
१९८२

विज्ञान महाविद्यालय

सम्पादक :—
डॉ० विजय शंक

वेदों में पर्यावरण-संरक्षण

धनवान व्यक्तियों की तृष्णा, निर्धनों की मौलिक आवश्यकताओं के प्रति हमारी उदासीनता एवं असावधान टेक्नालाजी का एक ऐसा तिगुड्डा है जिससे देश के पर्यावरण या यों कहिये कि मौलिक जीवन-आधार प्रणालियों को अत्यन्त हानि पहुँच रही है।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ यजु० ४०।१ ॥

संसार की वस्तुएं हमारे उपभोग के लिए हैं। किन्तु इनका उपभोग त्याग की भावना से करो। लोभी मत बनो। यह माया कभी किसी की नहीं हुई।

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम ॥
अथर्ववेद १२।१-३५ ॥

तेरा जो भाग मैंने खोद कर निकाला है वह शीघ्र ही बढ़ जाये। मेरे द्वारा तेरे हृदय या प्राण-मूलक अंगों को हानि न पहुंचे।

—सम्पादक

❀ ❀ ❀

प्रकाशक : श्री धर्मपाल हीरा कुलसचिव गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।
मुद्रक : गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी मुद्रणालय (हरिद्वार)।

ओ३म्

आर्यभट्ट विज्ञान-पत्रिका

अप्रैल १९८२

सम्पादक :

डॉ० विजय शंकर

अध्यक्ष : वनस्पति विज्ञान विभाग

परामर्शदाता :

प्रो० सुरेश चन्द्र त्यागी

प्राचार्य : विज्ञान महाविद्यालय

मूल्य : ५.००

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१. सम्पादकीय	: डा० विजयशंकर, अध्यक्ष व० वि० वि० गु० का० विश्वविद्यालय	१
२. आइंस्टोन–एक महान् वैज्ञानिक	: श्री प्रवीन मवान, विज्ञान महाविद्यालय गु० कां० विश्वविद्यालय	६
३. रहस्यमय उड़नतश्तरियां	: प्रो० विजयेन्द्र कुमार प्रवक्ता, गणित विभाग गु० कां० विश्वविद्यालय	११
४. मरुस्थल में पोमालाजी का विकास	: डा० पुरुषोत्तम कौशिक, प्रवक्ता व० वि० वि० गु० कां० विश्वविद्यालय	१४
५. वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण संरक्षण	: डा० जयदेव वेदालंकार, प्रवक्ता दर्शन विभाग गु० कां० विश्वविद्यालय	१६
६. कुछ ज्ञान की बातें	: श्री संजय कुमार, विज्ञान महाविद्यालय गु० कां० विश्वविद्यालय	२४
७. मानव शरीर की माया	: श्री गोपाल शर्मा पंडित, विज्ञान महाविद्यालय गु० कां० विश्वविद्यालय	२५
८. आंखों में भेंगापन	: श्री लोकेश कुमार राले, विज्ञान महाविद्यालय गु० कां० विश्वविद्यालय	२७

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
९. चाद पर जीवन क्यों नहीं	: श्री सुशील कुमार, विज्ञान महाविद्यालय गु० कां० विश्वविद्यालय	२९
१०. न्यायालय में……	: श्री महेशचन्द्र जोशी, विज्ञान महाविद्यालय गु० कां० विश्वविद्यालय	३०
११. कैन्सर	: श्री अवधेश कुमार शर्मा; विज्ञान महाविद्यालय गु० कां० विश्वविद्यालय	३४
१२. अन्तरिक्ष में प्रदूषण	: प्रो० हरीशचन्द्र ग्रोवर, प्रवक्ता गु० कां० विश्वविद्यालय	३९

❀ ❀ ❀

सन्देश

"आर्य भट्ट विज्ञान पत्रिका" विज्ञान एवं टेक्नालाजी की जानकारी को सरल हिन्दी भाषा में जन-साधारण तक पहुंचाने का सफल माध्यम सिद्ध हुई। वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण एवं सुधार के महत्व एवं आवश्यकता को देखते हुए इस अंक से पत्रिका पर्यावरण संबन्धो विषयों की ओर अधिक ध्यान दे रही है। यह ठीक ही है। सभी विशेषज्ञ आज इस बातसे सहमत्त है किपर्यावरण सुरक्षा प्राप्त करने के लिए पर्यावरण शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। इस बात का दृष्टिमें रखते हुए पत्रिका के सम्पादक डा० विजयशंकर ने इस अक से पर्यावरण-शिक्षा गीत माला प्रारम्भ की है जिसका पर्यावरण-शिक्षा में विशेष योगदान होगा। योजना आयोग, भारत सरकार द्वारा चालू को गई इको-डेवलपमेन्ट परियोजना में भी पर्यावरण-शिक्षा के महत्व पर बल दिया है। इस प्रकार पत्रिका अब इको-डेवलपमेन्ट प्रोग्रामों में भी भाग लेगी एवं उन्हें सफल बनाने में योगदान प्रदान करेगी।

मुझे यह जानकर भी हर्ष है कि इस वर्ष से स्वामी श्रद्धानन्दजी के आदर्शों के अनुरूप विज्ञान महाविद्यालय के विद्वान् अध्यापकों ने विज्ञान की शिक्षा हिन्दी भाषा के माध्यम से देना प्रारम्भ कर दिया है। उनका विचार है कि तकनीकी एवं वैज्ञानिक शब्दावली अन्तरराष्ट्रीय हो अपनायेंगे। यह उचित भी है। इससे जहां विद्यार्थियों के लिए विज्ञान बोध सुगम और सरल हो जायेगा वहां उनका अन्य देशों में होने वाली वैज्ञानिक प्रगति से भी सम्पर्क बना रहेगा।

साथ ही मैं भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान सगठन के योग्य वैज्ञानिकों को उनकी अनेक सफलताओं पर बधाई देता हुआ इनसेट की सफलता के लिए शुभकामना करता हूं।

मैं इस अवसर पर भारत के ओजस्वी अंटारकटिका विजय दल को भी उनकी अनुपम सफलता पर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की ओर से हार्दिक बधाई सन्देश भेजना चाहूंगा। इस दल ने बहुत जोखिम उठाकर गत ६ जनवरी को दक्षिणी ध्रुव पर स्थित अंटार्कटिका महाद्वीप के बर्फीले क्षेत्र में भारत का तिरंगा फहराकर भारतीय समुद्री इतिहास में एक स्वर्ण-पृष्ठ जोड़ा है। इस क्षेत्र में अब तक सम्पन्न राष्ट्रों का वर्चस्व था। भारत ने यहाँ प्रवेश कर इस क्षेत्रकी असीम खनिज और समुद्री सम्पदा पर अपना हक जमाया है। सही मानो तो ऐसे वीर धीर पुरुष ही असली ब्रह्मचारी हैं। मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूं जब गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को ऐसे दलों में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जायेगा। आइये, हम इस दल का अभिनन्दन करें।

मैं आर्य भट्ट पत्रिका की सफलता की कामना करता हूं।

बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति

दिनांक ८-४-८२

विश्वविद्यालय, इकोडेवलपमेन्ट और पर्यावरण शिक्षा

—डा० विजय शंकर

छठी पंचवर्षीय योजना में विश्वविद्यालयों के राष्ट्रीय विकास मे सक्रिय भाग लेके को परिकल्पना की गई विचार किया गया एव उन्हे प्रोत्साहन दिया गया है। अतः अब विश्वविद्यालय केवल ज्ञान के भण्डार को बढाने तक ही सीमित नहीं रहेंगे, बल्कि वे इस ज्ञान को जनता को समस्याओं के समाधान के लिए भी उपयोग में लायेगे। योजना के अनुसार उच्च-शिक्षण सस्थाओ को सामुदायिक विकास कार्य-क्रमो मे भाग लेने के लिए प्रोत्साहिय किया जायेगा और उन्हे विद्यार्थी एव फैकल्टी के प्रसार सेवा द्वारा आवश्यक सहायता दी जायेगी। विद्यार्थियों एवं अध्यापको द्वारा की जाने वाली इस प्रसार-सेवा को समाज सेवा न समझकर उनका एकेडेमिक कार्य समझा जायेगा। आज सारे विश्व मे इको-डेवलपमेन्ट आन्दोलन तेजी से चल पडा है। इसका कारण इस बात का स्वीकार कर लिया जाना है कि समस्त वृद्धि एवं विकास के मामलो में आपस मे सामजस्य एवं तालमेल होना चाहिए। विद्यार्थी एवं अध्यापको केइकोडेवलपमेन्ट प्रोग्रामो मे भी भाग लेने पर बहुत बल दिया जा रहा है। इसके लिए योजना आयोग ने त्रिमुखो योजननीति अपनाई है।

१—युवको एव युवतियो मे पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता के प्रति चेतना जागृत करना एवं उनका उसमे भाग लेना।

२—विश्वविद्यायल के शोध कार्य-क्रम केवल ज्ञान की सीमाओ को ही आगे बढाने तक सीमित न रहें बल्कि उत्पादन की सीमाओं को भी बढ़ायें।

३—समान कृषि-परिस्थितिक क्षेत्रोंमें स्थित विश्वविद्यालयों का ऐक्शन रिसर्च के समन्वित कार्य-क्रमों में भाग लेना।

प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डा० एम. एस. स्वामीनाथन के नेतृत्व में योजना आयोग नई दिल्ली ने निम्नलिखित तीन कोआर्डिनेटेड ऐक्शन रिसर्च प्रोजेक्ट्स बनाई है :—

१—हिमालयन इको डेवलपमेन्ट

२—समन्वित गंगा योजना

३—पश्चिमी घाट डेवलपमेन्ट

समन्वित गंगा योजना :—

गंगा नदी हमारे लिए पवित्र है, एक तीर्थ

है। लेकिन क्या हम इसे स्वच्छ रख पा रहे हैं। कारखानो और बस्तियों की गन्दगो को गंगा के जल मे प्रवाहित करते हुमे तनिक भी हिचकिचाहट नही होती। यह २५२५ किलो मीटर लम्बी जल धारा है, कितनी हो महत्वपूर्ण वनस्पतियां इसके किनारे उगती है, । यह सिचाई यातातात, बिजली विद्युत उत्पादन, एव मत्स्य उत्पादन का स्रोत है। हमारे मष्तिष्क मे गगा अनेक परम्पराओ, एवं धार्मिक कार्य-क्रमो से बंधी हुई है। फिर भी हम इसे प्रदूषत करने से नही कचूते। नेहरू जी के शब्दों मे :—

'इतिहास के उषाकाल से गगा ने अनगिनित लोगों को अपनी ओर अकर्षित किया है। गगा की कहानी भारत की सभ्यता एव संस्कृति की, राज्यों के उत्थान पतन की, महानगरों को, मानव के साहस और पराक्रम की कहानी है……"

ऐसी धारा का बहता रहना इसकी पवित्रता एवं इसकी स्वच्छता को बनाये रखना अत्यन्नावश्यक है यदि हमें इसकी उपयोगिना बनाये रखनी है। केवल गंगा ही क्यों, पूरे वातावरण का संरक्षण एवं सुधार वर्तमान और आने वाली पीढ़ियों के जीविन बने रहने के लिये अनिवार्य है। हम वातावरण को इतना प्रदूषित न कर दे कि हम स्वय ही इसके शिकार हो जायें।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति, श्री गोवर्धन बलभद्र कुमार हूजा, आई. ए एस (रिटायर्ड) के पवित्र प्रयास से योजना आयोग ने विश्वविद्यालय को गगा प्रोजेक्ट पर काम करने वाले विश्वविद्यालयों की सूची में शामिलकर लिया है। गगा के अध्ययन में भारत के १६ विश्वविद्याभाग लेगें। गगोत्री से नरोरा तक गगा का सम्मिवित अध्ययन ३ विश्वविद्यालय करेगे— गढ़वाल विश्वविद्यालय, रुड़की विश्वविद्यालय, गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय। इस सम्बन्ध मे २० मार्च १९८२ को डा० स्वामीनाथन के नेतृत्व मे दिल्लो में विभिन्न कुलपतियों को एक सभा हुई जिसमे गुरुकुल कांगडो विश्वविद्य लय के कुलपति का प्रतिनिधित्व डा० विजय शंकर अध्यक्ष वनस्पति विज्ञान ने किया। विश्वविद्यालय मे गगा के अध्ययन के लिये एक कोआर्डिनेटेड सैल की स्थापना की गई है जिसके प्रोजेक्ट कोआर्डिनेटर, डा० विजयशकर नियुक्त हुए है। समस्त विज्ञान विभाग इस अध्ययन मे भाग लेगे साथ ही निकटवर्ती संस्थाओ जैसे बी० एच० ई० एल० हरिद्वार, आई डी. पी.एल. ऋषिकेश, एफ. आर. आई. एव बी. एम. आई. देहरादून के वैज्ञानिकों एवं इन्जीनियरो तथा सामाजिक कार्यकर्ता एवं विद्यार्थियो का भी इस प्राजेक्ट मे सहयोग लिया जायेगा। विश्वविद्यालय इस अध्ययन को फिलहाल सहारनपुर और बिजनौर जिले तक सीमित रखेगा। योजना आयोग से समुचित साधन उपलब्ध होने पर ये कार्यक्षेत्र बढ़ाया जा सकेगा। विश्वविद्यालय ने प्रोजेक्ट के निम्न-

लिखित दो पहलुओं का अध्ययन करने का विचार बनाया है :—

१. इकालोजी एन्ड एनवायरनमेन्ट (परिस्थितिकी एवं पर्यावरण)

इसके अन्तंग निम्नलिखित अध्ययन प्रस्तावित है :—

अ—गंगा जोन के वनस्पतियो, जन्तुओ, एवं फिजिकों-केमीकल केरेक्टर्स ।

ब—गंगा के प्रदूषण के स्रोत ।

स—तीर्थ यात्रियो का प्रभाव ।

द—जल शोधन में सक्रिय प्राकृतिक शक्तियों का पता लगाना ।

य—गंगा के किनारे उगने वाली औषधि, एवं लेग्यूमिनस पौधो का प्रकृति एवं देश की अर्थ व्यवस्था मे योगदान ।

२. सोशियो इकानामिक (सामाजिक-आर्थिक)

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित अध्यय । कार्य प्रस्तावित हैं :—

अ—कांगड़ी और उससे लगे हुए ग्रामों में तथा अन्य ग्रामों मे गंगा की बाढ़ द्वारा होने वाली हानि जैसे भूमि कटाव आदि को रोकना ।

ब—पर्यावरण शिक्षा का प्रसार—इसके लिये उपयुक्त साहित्य का सृजन करना एवं विश्वविद्यालय द्वारा जो ४ पत्रिकाये प्रकाशित की जा रही है, इनके एवं स्पेशल बुलेटिन द्वारा पर्यावरण शिक्षा का गंगा क्षेत्र में प्रसार । एन. एस. एस. एवं गावों के युवक केन्द्र भी इस कार्य-क्रम को सफल बनाने में शामिल किये जायेंगे । समय समय पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा भी जन साधारण में एवं स्कूली बच्चों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा की जायेगी ।

स—गंगा जोनके लोगो की, विशेष रूप से ग्रामीणों की आर्थिक, स्थिति का अध्ययय एवं उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए सुझाव देना एवं स्कीम लागू करना ।

द—गंगा के किनारे एवं किनारे के गावो में उपयुक्त वृक्षों की पौध लगाना ।

विश्वविद्यालय द्वारा गंगा बेसिन में अभी तक किये गये सोशियों इकोनोमिक कार्य एव उपलब्धियाँ :—

विश्वविद्यालय द्वारा, कुलपति श्री जी० बी० के हूजा की प्रेरणा स्वरूप कागड़ी ग्राम सुधार योजना के अन्तगंत जो कार्य समन्वित गंगा योजना प्रारम्भ होने से पूर्व हुये हैं उनके बारे मे यहां बता देना उचित होगा । इस संस्था का गंगा से बहुत पुराना सम्बन्ध है, सन् १९०२ से जब स्वामी श्रद्धान्द ने गंगा के तट पर इस संस्था की स्थापना की थी ।

विश्वविद्यालय के जो कार्य कांगड़ी ग्राम मे, जो कि गंगा के तट पर स्थित है, किये और जो उपलब्धिया प्राप्त की वे नीचे दी जा रही हैं। कांगड़ी ग्राम सुधार योजना, जिसके निदेशक डा० विजय शकर अध्यक्ष वनस्पति विज्ञान है, के अन्तंगत जो कार्य क्रम चलाये गये एवं उपलब्धिया प्राप्त की, वे इस प्रकार हैं :—

१–ग्राम में कुछ उद्योग; जैसे : टोकरी एव रेशम उद्योग चालू किये गये जिससे वहा की आर्थिक स्थिति में सुधार हो।

२–हरिजनों के लिये एक जल–कूप बनाने का कार्य-क्रम प्रारम्भ हो चुका है।

३–सड़क—ग्राम को मुख्य सड़क पर जोडने के लिये एक पक्की लिंक रोड का निर्माण हो चुका है, अभी तक आने जाने का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं था,।

४–औषधिय पौधे—कुछ महत्वपूर्ण औषधिय पौधे गांवों में लगाये गये।

५–वृक्षारोपण—गत वर्ष १५०० वृक्षों की पौध गावों में लगायी गई।

६–बाढ़—कांगड़ी एवं निकटवर्ती ग्रामों को बाढ़ से हानि उठानी पड़ती है। इनको बाढ़ से बचाने के प्रयास चल रहे हैं। कमिश्नर मुरादाबाद मंडल, एव विजनौर जिले के अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित किया गया जिसके फलस्वरूप इन्जीनियर्स की एक टीम ने मौके पर स्थिति का निरीक्षण किया।

७–पुस्तकालय—ग्राम मे १००० पुस्तको से श्री गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुस्तकालय खोला गया, जिसका उद्घाटन विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र ने किया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के कुलपति ने, जिनके पूज्य पिता जी की स्मृति में यह पुस्तकालय खोला गया, ५००)रुपये प्रतिवर्ष सघड़ विद्या ट्रस्ट से देने की घोषणा की। भारत के प्रसिद्ध इतिहासाकार, डा० सत्यकेतु ने इस अवसर पर अपनी सब पुस्तकों को एक-एक प्रति पुस्तकालय को देने की घोषणा की योजना निदेशक डा० विजयशकर ने ग्राम वासियो को योजना को उपलब्धि एव भावी कार्य-क्रमो से अवगत कराया। श्री जगदीश प्रसाद विद्यालंकार,पुस्तकालयाध्यक्ष श्री डी० पी० हीरा रजिस्ट्रार, श्री वी० एम० थापर वित्त अधिकारी ऐवं अनेक अध्यापक भी इस अवसर पर उपस्थित थे।

मिट्टी का मूल्य--अमूल्य—

खाके वतन का मुझको हर ज़र्रा देवता है–
इकबाल।

इकबाल ने अपने देश प्रेम के जिन जजबातो को उपरोक्त शब्दों मे ढाला हे, उनको यदि वैज्ञा-

निक चश्मे से देखा जाए तो भी वे उतने ही अर्थ पूर्ण एव जोरदार बने रहते हैं। मिट्टी का एक-एक कण हमारे लिए कीमती है। हमारे पेड-पौधे इन्ही में पलते और बढ़ते है। और क्योकि मनुष्य का जीवन इन पेड-पौधों पर निर्भर करता है अत. वह भी अन्ततोगत्वा मिट्टी के इन कणो पर ही जीवित है। भारत मे धरती को 'धरती माता' कहना, ऐसे ही चिन्तन का प्रतीक है। डा० जे० एस० कंवर का वह लेक्चर जो उन्होने इन्टर नेशनल कान्फरेन्स आन इन्वायरनमैन्टल एजूकेशन (१९८२) नई दिल्ली मे, जिसमे लेखक को भी शामिल होने का अवसर मिला था, 'सेव दी सायल"–'सेव दी नेशन" (भूमि बचाओ, राष्ट्र बचाओ) नामक शीर्षक से दिया था, वह भी भूमि का, मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ सतह का, हमारे जीवन के लिए महत्व को दर्शाता है, उससे प्रेम करना सीखाता है। उनका यह कथन है कि वे राष्ट्र जिन्होने अपने देश की मिट्टी की कदर नही की वे इतिहास में सदैव नीचे गिरे कितना अर्थपूर्ण एव सत्य है।

किसी राष्ट्र की सम्पत्ति वहाँ के जल, थल एव वन तथा जो भी कुछ वे उत्पादन करते है वह है। ये हमारी सम्पन्नता के आधार हैं। किन्तु दुर्भाग्य है कि आज इन्ही को खतरा पैदा हो गया है, और वह भी स्वयं मनुष्य के सोचने के गलत तरीके एवं कार्यो से। आज से २३०० वर्ष पूर्व अरस्तु ने कहा था, "मिट्टी पौधों का पेट है।" तब क्या हम पौधो के पेट को, अपने पेट को हानि पहुंचाए बिना, हानि पहुंचा सकते हैं। राष्ट्रो की सेनाये एक-एक इच भूमि के लिए लडती है, किन्तु जब बाढ़ एव तेज वायु के द्वारा लाखो टन ऊपरी उपजाऊ सतही मिट्टी हमारे देखते-२ कट जाती है,तो कोई एक आंसू भी नही गिराता। भारत प्रतिवर्ष ५ से ६ हजार मीलियन टन मिट्टी की उपरी उपजाऊ सतह खो रहा है। किन्तु इस अपार हानि को रोकने के लिए कोई आन्दोलन नही होता। भूमि के इस दुष्प्रयोग के विरुद्ध कोई आवाज तक नही उठाता। हमारे देश की भूमि का कुल क्षेत्रफल ३२८ मीलियन हेक्टर (३२ करोड ८० लाख टन हेक्टर) है। इसमें से १५० मीलियन हेक्टर (१५ करोड हेक्टयर) भूमि जल एवं वायु के कटाव के कारण खराब हो रही है अत. कोई आश्चर्य नही कि भारत की आधी से अधिक जनसंख्या गरीबी-रेखा के नीचे हो। हम धरती को 'धरती माता' कहते हैं। क्या हमें एक अस्वस्थ मा से स्वस्थ व्यक्ति की आशा हो सकती है।

हमे, हमारा भोजन, कपड़े, मकान आदि धरती से ही प्राप्त होते है, भूमि की इस ऊपरी उपजाऊ परत को जिनसे ये प्राप्त होते है, बनने मे लाखों वर्ष लगे हैं और इसने हमारे राष्ट्र को हजारो वर्ष तक पाला है। अत: अपनी इस विरासत को सुरक्षित रखना हमारा कर्त्तव्य है। ये राष्ट्रीय परिसम्पत्ति है। प्रत्येक व्यक्ति का यह प्रयत्न होना चाहिए कि वह जो कुछ मिट्टी मे से प्राप्त करे, उसे मिट्टी को लौटाए बल्कि उसे आगे

सुधारें जिससे कि आने वाली पीढ़ियों के लिए वह आज की अपेक्षा अधिक अच्छी भूमि छोड़कर जाए। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर योजना बनाना आवश्यक है।

हमे अपनी भूमि के विषय मे जानकारी होनी चाहिए, उसकी समस्याओं को समझना चाहिए, उसकी उत्पादन क्षमता का पूर्ण लाभ उठाने मे जो रुकावट है उसे नवीन टेक्नालाजी एव ठोस प्रबन्ध प्रणालियों द्वारा दूर करना चाहिए। भूमि-समस्याओं का जनक एवं शिकार दोनो ही मनुष्य है चाहे वह समस्या बाढ़ हो या सूखा, अकाल, जल एवं ऊर्जा की कमी या बीमारी।

बाढ़—

नेशनल कमीशन आन फ्लड (१६८०) के अनुसार पूरे देश मे ४० मीलियन हेक्टर भूमि बाढ ग्रस्त है, ये समस्या मुख्य रूप से इन्डोगैन्जेटिक बेसिन, विशेष रूप से उ० प्र०, बिहार, पश्चिमी बगाल, आसाम, उड़ीसा में है। प्रतिवर्ष ८ मीलियन हेक्टर भूमि, बाढ की लपेट में आती है जिससे २५० करोड रुपये की वार्षिक हानि होती है। १६७१–८० के मध्य अनुमानित हानि ७३६ करोड रुपये की थी। बाढ़ की इस व्यापकता का कारण मनुष्य का बिना विचारे कार्य करना, प्राकृतिक वनस्पत्तियो, एवं वन का अतिशोषण, भूमि का कुप्रबन्ध, एव कृषि भूमि में पानी रोकने की क्षमता में कमी है।

जल एवं ऊर्जा की कमी—

जल और उर्जा की कमी का कारण भी कुछ सीमा तक, अन्धाधुन्ध बन कटाई और जल विभाजक में भूमि सरक्षण का न होना है।

लवणता एव क्षार—

भारत मे ७ मीलियन हेक्टर भूमि लवणता एव क्षार से प्रभावित है और ६ मीलियन हेक्टर जललग्नता से। और ये समस्या उन क्षेत्रो मे अधिक है जहां सिचाई कुछ समय से प्रारम्भ हुई है। इस समस्या के मुख्य कारण नहर एव नालियो से रिसन (सीपेज) एव सतही और अधोसतही (सरफेस और सब–सरफेस) जल निकास मे बाधा और जल का अच्छा प्रबन्ध न होना है। इस प्रकार लाखों हेक्टर भूमि को लवणीय बनाने की जिम्मेदारी एव दोष सिचाई को जाता है। सिंचाई केवल इन्जीनिर का कार्य माना जाता है, और बाध बनने के पश्चात् इन्जीनिर का काम समाप्त समझा जाता है। जल निकास और जल के उपयोग और प्रबन्ध के लिए उचित सिस्टम विकसित करने की ओर बिल्कुल ध्यान नही दिया जाता।

* * *

पर्यावरण शिक्षा

पर्यावरण सरक्षण एव सुधार के प्रोग्रामो को सफल बनाने के लिए पर्यावरण शिक्षा आवश्यक है। इसके लिए सरल, सुलभ एव आकर्षक साहित्य सृजन करना चाहिए, जो वन समुदाय को इस क्षेत्र में शिक्षित कर सके। अर्थ पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टिकोण लिए हुए एवं पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं को दर्शाते हुए और समझाते हुए कविताए या गीत, चित्र पेम्पलेट, कार्टून, लेख, लघु कथा, रेडियो एव दूरदर्शन के लिए साहित्य नाटक आदि का सृजन इस दिशा मे महत्वपूर्ण योगदान कर सकते है ऐसा साहित्य पर्यावरण शिक्षा का सार्थक अग साबित होगा। अलग-२ आयु एव शैक्षणिक स्तर के लोगों के लिए अलग-अलग स्तर का साहित्य का निर्माण करना आवश्यक है। इस साहित्य के द्वारा लोगो को पर्यावरण का जैसे पर्वतो, नदियों, भूमि पौधो जन्तुओ, हवा आदि का एव उनके अन्त: सम्बन्धो का और उनका मनुष्य पर प्रभाव का ज्ञान हो सकेगा और उनके अन्दर अपने पर्यावरण के प्रति यह चेतना जागृत हो सकेगी कि इसको स्वच्छ रखना एव इसके सब घटको, कारकों मे संतुलन बना रहना उनके अपने और आने वाली पीढ़ी के लिए कितना आवश्यक है। पर्यावरण विज्ञान एक बहुविषक विषय है। उच्च शैक्षणिक यौग्यता वाले व्यक्तियों, विश्वविद्यालयो एवं कालेजों के लिए जो उपयोगी साहित्य बनाया जाए उसमें नाना विषयो जैसे पर्यावरण कारक, स्वास्थ्य, मानव बस्तियाँ, उद्योग, कृषि विकास, ऊर्जा, यातायात, सैन्यीकरण, अर्थशास्त्र एवं जेनोंटिक रिसोरसिज का समावेश आवश्यक होगा। ऐसा साहित्य पर्यावरण के सम्पूर्ण रूप को समझने में मदद देगा। मनुष्य द्वारा की जाने वाली वे समस्त क्रियायें या कार्य जो वह प्रकृति के पदार्थों एव शक्तियों को मानव समाज के लिए उपयोगी बनाने हेतु करता है, (इसमें समस्त विकास योजनाये सम्मिलित हैं) उनका हमारे वातावरण पर क्या प्रभाव पडता है यह समझने और अध्ययन करने में उपरोक्त साहित्य की पृष्ठ-भूमि बहुत काम देगी। तब हम देश के विकास के लिए किए गए कार्यों का जैसे सडक, पुल, बांध, नाना प्रकार के उद्योग चालू करना, कृषि, सिचाई, उर्वरक एव कीट नाशक औषधियों का प्रयोग, यातायात एव ऊर्जा के साधनो का उपयोग, देश की सुरक्षा के लिए कि गए प्रयत्न, एव सामग्री तैयार करना आदि या यो कहा जाए कि मनुष्य और देश की खुशहाली के लिए उठाये जाने वाले सब पगो का पर्यावरण पर प्रभाव और उनके अन्त: सम्बन्ध तथा मनुष्य पर उनका प्रभाव अधिक अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे एवं उनके विश्लेषाणात्मक अध्ययन द्वारा पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने एवं उसे अधिक अच्छा बनाने के कारगर

सुझाव दे सकेंगे एवं पग उठा सकेंगे। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं योजना आयोग को चाहिए कि वे इस प्रकार के साहित्य के सृजन के लिए विश्वविद्यालयो में या अलग से स्वतन्त्र पर्यावरण विभागों की स्थापना करें जिससे पर्यावरण संरक्षण एवं सुधार के कार्यों में गति आ सके। इन विभागों का सीधा सम्बन्ध समस्त सरकारी और गैर सरकारी विकास योजनाओं एवं विभागों उद्योगो कृषि, इन्जीनियरिंग, स्वास्थ्य एव वन विभाग तथा अन्य शैक्षणिक संस्थाओं से होना चाहिए जिससे उनमे अनेक समस्याओं पर विचार-विमर्श होता रहे। इससे दोनों को लाभ होगा। इस प्रकार से यह विभाग पर्यावरण साहित्य के निर्माण के अतिरिक्त पर्यावरण सलाहकार का रोल भी अदा कर सकेंगे। ऐक्शन रिसर्च के जिन प्रोग्रामों पर डा. एम.एस. स्वामीनाथन के नेतृत्व मे योजना आयोग बल दे रहा है, उनके लिए भी शोध कर्त्ताओं मे एक व्यापक एवं समन्वित दृष्टिकोण का होना आवश्यक है। अपने विषय में विशेष योग्यता के साथ इस लेख मे उपर जिन विषयो का उच्च शैक्षणिक योग्यता वाले व्यक्तियों के लिए साहित्य सृजन के सम्बन्ध में जिक्र किया गया है उनमें भी शोधकर्त्ता का आवश्यक सीमा तक प्रवेश होना अनिवार्य है। तब ऐक्शन रिसर्च प्रोग्रामों के एवं पर्यावरण संरक्षण तथा सुधार के समस्त प्रोग्रामों के साथ अधिक न्याय हो सकेगा। साथ ही तब इस क्षेत्र एवं दिशा मे लिए गए प्रत्येक कदम को उठाने के पहले गहराई से एवं समन्वित दृष्टिकोण से सोचा जा सकेगा, उसका पर्यावरण पर सम्पूर्ण प्रभाव का ज्ञान हो सकेगा तथा उन को आवश्यकतानुसार सही मोड़ दिया जा सकेगा जिससे इन प्रोग्रामो से वाँछित सफलता, बिना प्रदूषण बढाए, प्राप्त हो सके।

जन समुदाय को पर्यावरण सम्बन्धी समस्यायें जैसे वृक्षारोपण का महत्व, गगा नदी का प्रदूषण, भूमि कटाव, आदि के बारे में जानकारी छोटे-२ गीतों के द्वारा दी जा सकती है। इसी प्रकार यह बात कि वृक्षों से हमें आक्सीजन मिलती है पीपल के वृक्ष का उदाहरण देकर छोटे गीत, चुटकलो या कार्टूनों द्वारा बच्चो को बताया जा सकता है। आगे चलकर जब यही बच्चे बडे होंगे तब ये समाज में पर्यावरण के प्रति सही दृष्टिकोण बनाने में सहायक होंगे।

❀ ❀ ❀

आइंस्टीन—एक महान् वैज्ञानिक

—प्रवीन महान

नोबल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक आइंस्टीन संसार के महान् वैज्ञानिकों में गिने जाते हैं। इस महान् वैज्ञानिक का जन्म १४ मार्च १८७९ जर्मनी में हुआ था। उसके माता-पिता यहूदी थे। ये बचपन में एकान्त प्रिय और शर्मीले थे। इनकी स्कूली शिक्षा बहुत कठिनाई से हुई थी। इन्होंने ज्यूरिक पॉली टेक्निक से शिक्षा ग्रहण की। अपने एक मित्र की सहायता से क्लर्क पद प्राप्त किया। यहीं पर नौकरी करते हुए उन्होंने आपेक्षिकता का सिद्धान्त (Theory of Relavites) प्रतिपदित किया। जो कि आधुनिक संसार के लिए एक महत्वपूर्ण तथ्य है यहां पर उन्होंने उस समीकरण $E = mc^2$ का प्रतिपादन किया यहां पर······

E = उर्जा

m = द्रव्य का द्रव्यमान

c = प्रकाश का वेग (3×10^8 मीटर सेकण्ड)

यह समीकरण एक दिन विश्व का सर्वाधिक प्रसिद्ध समीकरण बन गया। यह समीकरण $E = mc^2$ द्रव्य और ऊर्जा की तुल्यता दर्शाता है। इसके अनुसार प्रत्येक पदार्थ में उसके द्रव्यमान के कारण ऊर्जा होती है। यह समीकरण परमाणु बम के विस्फोट से उत्पन्न हुई ऊर्जा को समझाने के लिए भी प्रयुक्त होती है। परमाणु बम नाभिकीय विखण्डन क्रिया पर आधारित है, नाभिकीय विखण्डन की परिभाषा के अनुसार यह वह प्रक्रम है जिसमें किसी भारी परमाणु का नाभिक अन्य नाभिकों मे जिनका द्रव्यमान ९२ से १७० मध्य होता है। इस प्रक्रम में कई न्यूट्रॉन उत्सर्जित होते हैं इनमें से कुछ अन्य भारी नाभिकों का विखण्डन करते हैं और शेष ऊर्जा में परिवर्तित हो जाते हैं। यह परमाणु उर्जा आइंस्टीन की समीकरण के अनुसार होती है। अतः परमाणुबम बनाने के लिए यह समीकरण काफी महत्वपूर्ण है ईसका सफल परीक्षण १६ जुलाई १९४५ को हुआ था। उस दिन प्रथम परीक्षण परमाणु बम का विस्फोट हुआ था। इस विस्फोट में द्रव्य ऊर्जा में रूपान्तरित हुआ था। और उसकी सूक्ष्म मात्रा से अत्यधिक विराट ऊर्जा प्राप्त हुई। इस समीकरण की सहायता से 'ऊर्जा सरक्षण के सिद्धान्त की पुष्टि हुई। आइस्टीन ने इस समीकरण का प्रतिपादन संसार से गरीबी और भूखमरी दूर

करने के लिए किया था परन्तु कुछ वैज्ञानिकों और राजनीतिज्ञो के कारण इसका दुरुपयोग हुआ। अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने कई खरब डालर खर्च करके परमाणु बम का निर्माण करने की अनुमति दे दी। ६ अगस्त १९४५ को जापान के हिरोशिमा तथा नागासकी नगर में परमाणु बम गिराकर नष्ट कर दिए। जापान के हरे-भरे खेतो को बजर भूमि तथा चहल-पहल से भरे नगरों को सुनसान तथा भयंकर बना दिया। आज भी उन नगरों मे इस विस्फोट के चिन्ह मिलते हैं। जब इस महान् वैज्ञानिक ने ऊर्जा के दुरुपयोग का समाचार सुना तो इन्हे काफी दुःख हुआ। इस समाचार को सुनने के पश्चात् इस वैज्ञानिक का दिन का चैन और रात की नींद हराम हो गई। इनकी महान् आत्मा को काफी ठेस पहुंची। आइस्टीन ने कभी सपने मे भी यह नही सोचा था कि वे इस द्रव्यमान ऊर्जा का उपयोग विनाशकारी कार्यों के लिए करेगे। इन्होने राजनीतिज्ञों से प्रार्थना की कि वे विज्ञान की इस महत्वपूर्ण खोज का उपयोग नरसंहारक के रूप में न करे।

फिर भी यह परिश्रम व लगन से अपने शोध कार्यों में लगे रहे। उन्होंने यह प्रतिपदित किया कि जब किसी धातु पर प्रकाश डाला जाता है तो उसमें से इलेक्ट्रान निकलते हैं जिसमें धारा प्रवाहित की जा सकती है। यह प्रभाव 'प्रकाश-विद्युत के नाम से जाना जाता है और धातु से उत्सर्जित होने वाले इन प्रकाश कणों को 'फोटॉन' (Photon) के नाम दिया। इस शोध पर उन्हे १९३१ का विश्व प्रसिद्ध पुरस्कार प्राप्त किया। आजकल स्वचलित उपकरणों मे जहां प्रकाश-विद्युत सैलों का उपयोग होता है यह भौतिक के क्षेत्र मे एक महान् कार्य है।

आइस्टीन को द्रव्यमान ऊर्जा ($E = mc^2$) समीकरण को भौतिक तथा रसायन के क्षेत्रमें काफी महत्व है। आइंस्टीन जिन्होने अपने शोध शोध कार्यों से विज्ञान के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त की। इनकी मृत्यु १८ अप्रैल १९५५ को हृदयगति रुक जाने से हुई थी। यह हमे एक सच्चे और परिश्रम शील वैज्ञानिक के रूप में हमेशा याद रहेंगे।

* * *

रहस्यमयी उड़नतश्तरियाँ

प्रो० विजयेन्द्र कुमार

आधुनिक विज्ञान की सहायता से कुछ समय पश्चात् आप ऐसा वाहन प्राप्त कर सकेंगे जिसके द्वारा आप अंतरिक्ष में अथवा भूतल के दूरस्थ स्थानों पर बड़ी सुविधा पूर्वक अल्प समय में यात्रा कर सकेंगे। बस थोड़ी प्रतीक्षा और केवल उड़नतश्तरियों में प्रयुक्त ऊर्जा का रहस्य भर ज्ञात हो जाने की देर है।

वेद सब विद्याओं का भंडार है। सभी महत्व-पूर्ण विषयों का वर्णन वेदों में पाया जाता है। विज्ञान भी एक महत्वपूर्ण विषय है। वेदों में विज्ञान के कितने सिद्धान्तों का समावेश है? और क्या कोई ऐसा भी सिद्धान्त है जो वेदों में है और संसार को ज्ञात नहीं है इस विषय पर अनुसंधान की आवश्यकता है।

कठिनाई यह होती है कि जो विद्वान विज्ञान को जानते समझते हैं वे वेद नहीं समझते और जो वेद समझते हैं वे विद्वान विज्ञान से दूर होते हैं।

अभी तक ऐसा होता आया है कि विज्ञान जगत में कोई अविष्कार होता है फिर उसका वर्णन किसी न किसी रूप में वेद पुरान आदि में मिल जाता है। यह कथन कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा। महाभारत के युद्ध के काल में युद्ध का वर्णन नेत्र विहीन धृतराष्ट ने राजमहल में बैठे-बैठे युद्ध का वर्णन महर्षि वेद व्यास द्वारा इस प्रकार सुना था जैसे वे स्वयं युद्ध होता देख रहे हों ऐसा प्राचीन ग्रन्थों में लिखा हुआ पाया जाता है। इससे ऐसा लगता है कि उस समय दूर दर्शन का आविष्कार हो चुका होगा। महाभारत में लिखी यह बात पहले कपोल कल्पना लगती थी। विज्ञान के द्वारा दूरदर्शन का आविष्कार होने के बाद ये सत्य लगने लगी है।

प्राचीन ग्रन्थों में आकाशवाणी से घोषणा होने की बात अथवा कुछ सन्देश देने की बात कितने ही स्थलों पर लिखी पायी जाती है। लेकिन रेडियो के अविष्कार से पूर्व सामान्य मानव के लिए बिना मुख के वाणी की बात विश्वसनीय नहीं थी। अब ध्वनि विज्ञान की जानकारी के बाद ये सब कथन ठीक प्रतीत होने लगे हैं। इसके अतिरिक्त यह सुनते आये हैं कि देवताओं के पास विमान होते थे जिससे वे एक स्थल से दूसरे स्थल तक जा सकते थे। पक्षियों की उड़ान तो सब देखते रहे हैं लेकिन पक्षी तो किसी सवारी के

काम न आते थे। देवताओ के विमान जन साधारण के लिए जब तक आश्चर्य का विषय बने रहे जब तक अनेक प्रकार के वायु यानों का निर्माण नहीं कर लिया। इसी प्रकार प्राचीन काल के सहारक शस्त्र, अग्निबाण आदि के अस्तित्व के बारे में अब विश्वास होने लगा है क्योंकि मानव कही अधिक विनाशक शस्त्रों का निर्माण कर चुका है।

इस प्रकार पुराण वर्णित कितने ही रहस्यों को आधुनिक विज्ञान सुलझा चुका है लेकिन कुछ अनुभव अब भी ऐसे हैं जिनका रहस्य विज्ञान से अब तक नही सुलझाया जा सका है। इनमें से एक है उड़नतश्तरीयो का। इन्हें यू० एफ० ओ० (अन आइडेन्टीफाइड फलाईंग आब्जेक्ट) भी कहते हैं। पहले इन्हें फलाईंग सासर कहा जाता था। उड़नतश्तरीयों का इन्हें देखने वालो ने अलग ढंग से वर्णन किया है। कुछ व्यक्तियों ने इन्हें अपनी धुरी पर घूमती हुई काली तश्तरी के रूप मे देखा है। कुछ के अनुभव के अनुसार लाल रंग की। कुछ व्यक्तियो ने अन्य अलग अलग रंगो की उड़नतश्तरीयाँ देखी हैं।

उड़नतश्तरी में ऊर्जा का स्रोत क्या है इस विषय में वैज्ञानिक किसी निश्चित मत पर नहीं पहुँचे है। इस विषय में तो एक मत हैं कि यह पैट्रोल नही हो सकता क्योंकि उड़नतश्तरी को लम्बा सफर करना होता है और इतना पैट्रोल स्टोर करना संभव नही है। दूसरा विकल्प परमाणु ऊर्जा है। लेकिन इसमें विकिरण के खतरे चालक को रहते होंगे। अतः चालक ऐसा कोई सूट पहनते होंगे जो विकिरण के दुष्प्रभाव उन तक नहीं पहुंचने देते। तीसरा विकल्प जो पृथ्वी वासियों को ज्ञात नही है वह ग्रहों की आकर्षण शक्ति को संग्रहीत करके प्रयोग करना। चौथे विकल्प के रूप में उस तरह की ऊर्जा है जिसके कारण पदार्थ के कण बिना की ऊर्जा के खोये हुए अपने कक्ष में घूमते रहते है। हो सकता है इसी शक्ति का किसी प्रकार सग्रह करके उसे आवश्यकतानुसार घूर्णन और सरल रेखीय गति मे बदलते हों। एक अन्य विकल्प सौर ऊर्जा है। सूर्य हमेशा ही ब्रह्माड के किसी भाग को ऊर्जा प्रदान करता है। यही ऊर्जा किसी ढग से सग्रहीत की जाती है अथवा किसी प्रकार से विकिरण द्वारा प्राप्त की जाती है। लेकिन जिधर भी उड़नतश्तरी दीख पडी है प्रायः उसी क्षेत्र में रेडियम धर्मिता बढ़ी है अतः परमाणु शक्ति द्वारा चालित होने को अधिक सम्भावना है। इस तरह के वाहनों का वर्णन पुराणो में भी मिलता है। इन साधनों का प्रयोग करके जो युद्ध होता था उसे माया युद्ध कहते हैं। द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा, भीम के पुत्र घटोत्कच तथा रावण के पुत्र इन्द्रजीत इस तरह का युद्ध करते थे। लेकिन पृथ्वी वासियों के लिए तो यह लक्ष्य अभी प्राप्त करना शेष है। प्राप्त करने पर तो पृथ्वी वासी इसे चाहें तो साइकिल की तरह प्रयोग करें। जो चाहे अपनी उड़नतश्तरी में बैठे जहा चाहे वहा जाय।

वैज्ञानिक कितनी ही अनहोनी घटनाओं का सम्बन्ध उडनतश्तरियों से जोड रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में जहां भी तुफान अथवा बाढ़ आई है वहां रेडियम धर्मिता में असाधारण वृद्धि हुई है। आन्ध्र प्रदेश में तूफान के बाद, दिल्ली मे तुफान के बाद. मोरवी तथा उत्तरकाशी मे भी बाढ़ के बाद उन स्थानों पर रेडितम धर्मिता वैज्ञानिकों के अनुसार सामान्य से काफी अधिक पायी गयी। उड़नतश्तरी दिखायी पड़ने को सबसे नयी घटना बस्तर मे घटी है। समाचार पत्र के अनुसार इसो आदिवासी इलाके में लोगो ने चार वस्तुएें आकाश में उड़ती देखी जो ३० मिनट तक आकाश में चमकती रही। ये वस्तुएे इन्द्र धनुषी रंग की, सफेद रंग की तथा नारगो रग की थी। उड़नतश्तरी कहां से आती है इस सम्बन्ध में भी विभिन्न मत है। कुछ लोग तो यह कहते हैं कि उड़नतश्तरी कुछ नही है ये सब मन के बहम है। लेकिन भारत मे बहुत से व्यक्ति इन्हे अपनी आंखों से देख चुके है। अमरीका में तो यह कहा जाता है कि १० प्रतिशत से अधिक व्यक्ति अपनी आंखों से देख चुके हैं। यहां तक कि अमरीका के राष्ट्रपति ने भी इन्हे देखा है। कुछ ऐसी धारणा भी रखते है टैक्नोलोजी की दृष्टि से अधिक विकसित देश दूसरे देशों को जासूसी के लिए उड़नतश्तरी भेजते हैं लेकिन कोई भी इसे निश्चित रूप से नही कह सकता। उड़नतश्तरी के सम्बन्ध में ज्ञान 'यूफोलाजी' के अन्तर्गत आता है। उडनतश्तरियों के सम्बन्ध में अन्तिम अधिकृत जानकारी यूफोलॉजीस्टो के सम्मेलन में प्राप्त हुई हैं। इस सम्मेलन में यह निश्चय हुआ था कि कोई दूसरे लोक की सभ्यता धरती के बारे मे जानने लिए उड़नतश्तरिया भेजती है। दूसरी मान्यता यह है कि ये उड़नतश्तरियां पाताल लोक से महासागरों मे से होकर आती है। आशा है कुछ समय पश्चात् सही जानकारो प्राप्त हो सकेगो। शायद वेद इस विषय में कुछ पथप्रदर्शन कर सके।

* * *

मरुस्थल में पोमालार्जी का विकास : सेब, गोला और मुरिडया का मिठास

डा० पुरुषोत्तम कौशिक

राजस्थान के सादुलपुर रेलवे स्टेशन जिसे राजगड भो कहते हैं, से लगभग ३५ कि मी. दूर जिला झुन्जनू मे मलसोसर नाम का एक गांव है जो चारों ओर से रेत के सुनहरी टीलों से घिरा है। यहाँ की वनस्पति उसी प्रकार की है जिस तरह की सूखे इलाको और रेगिस्तानों में पाई जाती है। खेतों में दूर-दूर लगे जांड, जाल और कोकर के पेड तथा झाड़ियों के अतिरिक्त कोई फसल नजर नही आती। कही-कही नीम और लसोड़ा के पेड भी लगाए हुवे है। ग्रीष्म मे जाल के पील्हु और जाड का सांगर अथवा सांगरू यहा की प्रकृति के अनमोल उपहार हैं। जाड की कच्ची फलियो (सागर) की स्वादिष्ट सब्जिया और पकने के बाद लम्बी-लम्बी फलियो वाले ड्राई फ्रूट आपको अच्छे लगेंगे। यदि वर्षा हो जाती है तो असाढ़ी में चना, जौ, सरसों तथा तरा और सावनी में गुवार, मूग, मोठ तथा बाजरे की फसले हो जाती है। जांड और झाड़ियों की टह-नियो को हर साल काटकर उनके पत्तों को ऊट, गाय और भेड़ बकरियो के चारे के लिए एकत्रित कर लिया जाता है। यहां एक और झाड़ी होती है जिसे फोग (Caligonum polygonoides Linn) कहते है। फोग एक पत्तों रहित झाडी अथवा छोटा पेड़ होता है। ग्रीष्म ऋतु मे फोग की झाडियो पर मधुर खुश्बू वाले गुलाबी रग के फूल लगते है, पुराने जमाने मे इन्हें झड़ने के बाद इकट्ठा कर लिया जाता था और पकाने पर बडी स्वादिष्ट सब्जी अथवा रायता बनाने के काम आते है। दुर्भाग्य से अब यह पौधा इस क्षेत्र से लुप्त होता जा रहा है क्योकि इसके कच्चे फूलो को भी झाड लिया जाता है या तोड़ लिया जाता है इसलिए नये बीज नहीं बन पाते। और यदि बीज नही बनेंगे तो नये पौधे कहां से आयेंगे ?

यहां की शरद ऋतु मशहूर है। पर दिन मे धूप निकलने पर जनवरी के महीने में भी आपको कमीज-पायजामे में बाहर घूमना-फिरना सुहावना

लगेगा। ग्रीष्म ऋतु भयानक होती है, जबरदस्त आंधियां आती हैं। बिना पत्तों और काटों की एक और सदाबहार झाडी यहां उगती है जिसे खीप (Leptadenia spartium wight) कहते है। खीप के रस्से बाग बगीचे की बाड को बाँधने और बुनने के काम आते है। अक्टूबर, नवम्बर में बेरो की झाडियो पर छोटे-छोटे गोल बेर लगते है।

यहाँ के जलवायु को अनुकूल पाने वाले पौधो मे ही एज्युकेशन सोसायटी, मलसीसर, ने यहा एक फल उद्यान की स्थापना की। इस उद्यान मे बेरो की तीन किस्में है.

(१) सेब—जो कि लगभगएक छोटे कश्मीरी सेब की आकृति व साइज का हाता है।

(२) गोला—देखने में गोल और लगभग ३ मे ४ से मी. व्यास वाला होता है।

(३) मुण्डिया—ढोलक की तरह लम्बा होता है। बेरों की इन किस्मो मे बेहद मिठास और स्वाद है। इनकी पोमालाजो नीचे विस्तार पूर्वक वर्णित है।

पोमालाजी—इस शब्द का उद्गम लैटिन के "पोमम" शब्द से हुआ (पामम = फल, लोगस = का अध्ययन)। पोमालाजी फलो की विज्ञान के अध्ययन को कहते हैं। यह वनस्पति विज्ञान और बाग-बानो की मिलो-जुली शाखा है और फलों की विज्ञान का अध्ययन करने वाला पोमालाजिस्ट कहलाता है। एक फल विज्ञान के अनुसन्धान कर्त्ता के लिए बागबानी की कला से वनस्पति विज्ञान का ज्ञान अधिक आवश्यक है तभी वह अपनी एच्छिक 'वैरायटी' या फलदार पेडो को मनचाहे स्थान पर सफलता पूर्वक उगा सकता है। ऊपर बताये गये बेरो की पोमालाजी को निम्नलिखित शीर्षकों में दिया गया है, जैसे—बाग की बनावट पौधे तैयार करना, ग्राफ्टिंग या पौध चढाना, ग्राँख चढाना कैम्बियम की गति-विधि को प्रभावित करने वाले सूत्र, सिंचाई, खाद तथा आर्थिक दृष्टि से मुल्यांकन।

बाग की बनावट—वास्तव मे बाग की बनावट जिस प्रकार की जमीन उपलब्ध हो, उस पर निर्भर करती है, पर तो भी प्लैनिंग का बाग की सुन्दरता और फलों के उत्पादन से गहरा सम्बन्ध है। मलसीसर एक रेनिला क्षेत्र है, रेत के ऊंचे-ऊंचे टीलो को समतल करना कठिन तो है ही उसके साथ प्रारम्भ मे यहा कि प्रकृति के प्रतिकूल कदम है। हाँ एक बार बाग की स्थापना होने के बाद धीरे-धीरे क्षेत्र को समतल किया जा सकता है क्योंकि पौधों की जड़े रेत को बाँधे रखती है। पर सोसायटो के कार्यकर्त्ताओ ने प्रकृति की लैण्ड-स्केपिंग-आर्किटैक्चर मे कोई परिवर्त्तन नहीं किया जो दूर से देखने मे एक पहाडी घाटी का दृश्य नजर आता है। बाग को सुरक्षा के लिए चार-दिवारी का बनाना मंहगा पडता है इसलिए कांटे दार कोकर और अर्णी (Clerodendron

phlomoides L. f.) की बाड़ कर दी गई है, बाहरी बाड़ के अन्दर की ओर एक लाइन कुबबूल जिसे सुबबूल (Leucaena leucocephala भी कहते हैं, की लगाई हुई है। इससे बाड भी मजबूत बन गई और बाहर से आने वाले रेत के लिए रुकावट का काम करती है। सुबबूल को एक चमत्कारी पौधे के रूप में जाना जाता है क्योंकि इसके अनेक लाभ हैं–इससे अधिक प्रोटीन वाला चारा, इन्धन की लकडी, इमारती लकडी तथा हरी खाद मिलते हैं। इसकी बढ़ने की दर भी अधिक है। बाग की सुन्दरता को बढाने के लिए द्वार से आने वाले मुख्य मार्ग के दोनों ओर धामन जाति की घास की लाइने बनाई हुई है। बाग के अन्य क्षेत्र में भी अपरदन रोकने के लिए यह घास लगाया हुआ है। यह घास बिना सिचाई के यहा के जलवायु में चलता रहता है। बाग की बाहरी हैज की ओर कुछ बड़े कीकर के वृक्ष लगा दिये गये है ताकि उनके नीचे लगी छोटी पौधों को छाया रहे और एक प्राकृतिक ग्रीन हाऊस बन सके। दीवार रूपी ग्रीन हैज छोटे पौधों को खुश्क हवा और आँधियों से भी बचाती है। बाग के केन्द्र में भुण्ड के पूलों की एक झोपड़ी है।

पौध तैयार करना—इस क्षेत्र मे पाई जाने वाली देशी बेरी (Zizyphus nummularia) की जड़ें काफी गहराई तक जाती हैं और यह पानी की कमी में भी अपना गुजर करती रहती हैं। इसलिए इसी के बीजों से पौध तैयार की जाती है। बीजों को शीघ्र उगाने के लिए गुठली को तोड़कर मिर्जी (Kernel) को बाहर निकाल लिया जाता है। ७×१ मीटर आकार के ३० से.मी. गहरे गड्ढों में, पोलीथीन बैगज में मिट्टी डालकर हर एक थैले में एक-एक मिर्जी डाल दी जाती है। ऊपर बताये गये आकार के गड्ढे समानान्तर रखे जाते हैं, एक गड्ढे में १२०० पौध तैयार हो जाती हैं। बीज (यनि मिर्जी) के उगने में १० से १५ दिन लगते हैं और दो से तीन महिने में पौध तैयार हो जाती है।

ग्राफ्टिंग (रोपण)—पोलीथीन बैग मे लगी सीडलिंग को ऊपर से काट दिया जाता है, इसे स्कन्ध (स्टाक) बनाया जाता है और स्टाक के तने मे एक अग्रेजी के V के आकार का कट दे दिया जाता है। जिस किस्म की ग्राफ्ट या पौध लगानी होती है उसकी स्कन्ध (स्टाक) की मोटाई की एक टहनी को भी बाहर की ओर निकला हुआ V की आकृति का कट दे दिया जाता, इस टहनी को 'सायन' कहते है। सायन' के त्रिकोन को स्टाक के V की आकृति के गड्ढे में फिट कर दिय जाता है। ऐसा करने के बाद जोड वाले भाग के मोमी कागज और सुतली की सहायता से बाँध दिया जाता है। स्टाक और 'सायन' के वाहि-पूलों (वस्कुलर बन्डल्ज के एधा (कैम्बोयम) से नया उत्तक बनता हैं और शीघ्र ही स्टाक और शायन की वस्कुलर सप्लाई एक हो जाती है।

आंख लगाना—कई बार पूर्ण 'सायन' न लगाकर स्टाक अथवा स्कन्ध के पार्श्व से एक

कट डालकर 'सायन' की कली अथवा बड को उस कट में फिट करके मोमी कागज से और सुतली से बाँध दिया जाता है।

सेब, गोला और मुण्डिया की कुछ पौध शुरु-शुरु में जोधपुर से लाकर लगाई गई थी। अब मलसीसर में ही इन किस्मों की पौध तैयार की जाती है और एज्यूकेशन सोसायटी पौधों का मुफ्त वितरण भी करती है।

कैम्बियम अथवा एधा की गतिविधि को प्रभावित करने वाले सूत्र—

प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि यूकलिपटस मे कैम्बियम द्वारा बनाये गये सकेन्ड्री जाइलम और फ्लोइम का अनुपात ४:१ होता है। जाइलम का काम भूमि से प्राप्त किए गए पानी को पौधे के अन्य भागों में उपर ले जाना है और फ्लोइम का कार्य पत्तों द्वारा बनाए गये भोजन को जड़ तक ले जाना है, क्योंकि नया जाइलम और फ्लोइम, कैम्बियम अथवा एधा की गतिविधियों से बनता है और इस नये जाइलम और फ्लोइम के माध्यम से ही स्टाक और सायन का जाइलम तथा फ्लोइम आपस में जुडते हैं, और इस प्रकार दोनों की वस्कुलर सप्लाई एक हो जाती है। फल उत्पादन से सम्बन्धित ग्राफ्टिंग के प्रयोग करने वाले पोमालाजिस्ट के लिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि कौन-कौन से सूत्र कैम्बियम की एक्टिविटिज (गतिविधियों) को प्रभावित करते हैं। दिन की लम्बाई रोबिनिया (Robinia) में कैम्बियम द्वारा बनाई गई वुड की किस्म पर असर डालती है। रोबिनिया अपनी भारी, मजबूत, सख्त, लचकदार और चलनशील लकड़ी के लिए, लेगुमिनोसी परिवार का जान माना वृक्ष है। रोबिनिया में ऐसा पाया गया है कि छोटे दिनों में बनी लेट वुड या तो बिना वैस्सलज के या कम वैस्सलज के साथ बनती है। यहा तक कि लम्बे दिनों में अर्ली वुड ज्यादा और बड़े वैस्सलज वाली बनती है। जिम्नास्पर्मज में तो दिन की लम्बाई ट्रकीड्ज के व्यास को भी प्रभावित करती है।

इस प्रकार के प्रयोग किए गए हैं कि यदि पोपलस का छोटी-छोटी टहनियों से पत्तों की कलियों को तोड़कर उनपर लैनोलीन के लेप के साथ I. A. A (इन्डोल एसिटिक एसिड) भी लगाया जाता है तो कैम्बियम की कोशिकाओं का विभाजन शुरु हो जाता है तथा डिफरन्सिएशन भी होती है और इस तरह कैम्बियम से बने तत्वों (एलिमेंट्स) का लिग्निफिकेशन भी होता है। पर यदि I A A (इन्डोल एसिटिक एसिड) की जगह G. A (जिब्बरलिक एसिड) का प्रयोग किया जाए तो कोशिका विभाजन की प्रणाली तो शुरु हो जाती है पर लिग्निफिकेशन केवल कुछ ही तत्वों (एलिमेंट्स) का होता है। यदि I .A A. और G. A. दोनों का प्रयोग किया जाता है तो सैकेण्ड्री जाइलम और फ्लोइम की डिफरन्सियेशन साधारण (नोर्मल) ढंग से

होती है।

यहां तक कि I. A. A. (इन्डोल एसिटिक एसिड) और G A. (जिब्बरलिक एसिड) की मात्रा को कम या अधिक करके, डिफरन्सियेशन के बाद बनने वाले जाइलम और फ्लोइम की मात्रा को भी कन्ट्रोल किया जा सकता है। उच्च I. A. A. की मात्रा और लघु (हल्की) G. A. को मात्रा प्रयोग करने पर अधिकत जाइलम बनता है। हल्का I A. A. और गाढ़ा G. A. इस्तेमाल करने से फ्लोइम की मात्रा बढ़ती है। बेरी के कैम्बियम तथा कैल्लस की डिफरसिन्ये-शन से बनने वाले जाइलम और फ्लोइम के बारे में निसन्देह इस प्रकार के प्रयोग किए जाते रहते हैं।

खाद या उर्वरक—

पानी पर्याप्त मात्रा में न मिलने के कारण तथा भूमि के मिनरल बैलेन्स को ठोक रखने के लिए कृत्रिम उर्वरकों का प्रयोग न करके गाय के गोबर, ऊंट तथा भेड-बकरियों के मीगण, पक्षियों की बीट तथा गले, सडे वनस्पति पदार्थ से बनाई गई खाद का प्रयोग किया जाता है।

सिंचाई—

सौभाग्य से इस गांव में विद्युत से चलने वाला एक नलकूप है जो गांव को पानी सप्लाई करता है। गांव के जल वितरण विभाग के दो नलकूप इस बाग में लगे हैं जिनसे पाइप द्वारा समय-समय पर, खासकर छोटी पौधों को पानी दिया जाता है। यद्यपि यह पानी थोड़ा नमकीन है पर ये पौधे इनसे भली-भांति फूलते रहते हैं।

मूल्यांकन—

बेरों की ये वैराइटीज देखने मे सुन्दर तथा मीठी होने के कारण बड़ी लोकप्रिय बन गई है। इनका एक और गुण है कि इन फलों को कीड़ा नहीं लगना। मलसीसर के बाजार में दूसरे बेर जहाँ डेढ़ या दो रुपये प्रति किलो के भाव से बिकते हैं वहां सेब, गोला और मुण्डिया ५ रुपये प्रति किलो के भाव बिकते हैं

दो शब्द—

मलसीसर की एज्यूकेशन सोसायटी के अधि-कारी गण, सदस्य और विशेषकर युवा कार्यकर्त्ता श्री लियाकत अली और श्री बजरंगलाल, फल उत्पादन के इस सफल व नेक कार्य के लिए बधाई के पात्र हैं। आशा है वे इस बाग का और विस्तार कर सकेंगे।

❀ ❀ ❀

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण संरक्षण

– डॉ० जयदेव वेदालंकार

पर्यावरण शब्द का अर्थ बहुत ही व्यापक माना जाता है। आज का मनुष्य प्रदूषण से बहुत चिन्तित है। प्रदूषण की समस्या यदि इसी प्रकार बढ़ती चली गई तो, मानव जाति का विनाश एक शती से पूर्व ही हो जायेगा। प्रदूषण पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग कहा जा सकता है। पर्यावरण का प्रयोग आधुनिक युग में सबसे अधिक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वाट्सन ने सन् १९०८ में किया है। उसने कहा था कि हम जिस प्रकार के पर्यावरण मे रहेंगे हमारा निर्माण भी उसी प्रकार होगा।

भारतीय चिन्तना में आदि काल से ही पर्यावरण को दो रूपों में विभक्त किया है। प्रथम भौतिक पर्यावरण द्वितीय आध्यात्मिक पर्यावरण। प्रथम प्रकार के पर्यावरण के अन्तर्गत वायु जल और अन्नादि का सम्मिश्रण किया जाता है। वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण और अन्नप्रदूषण, इन तीनों प्रकार के प्रदूषणों को प्राचीन साहित्य में यज्ञ के द्वारा दूर करने का उपाय है। वेद में अनेक स्थानों पर प्रार्थना की गई है कि वायु, जल वनस्पतिया तथा अन्न आदि सभी समस्त दोषों से रहित हों, आधुनिक युग प्रदूषण से ही अधिक चिन्तित है, जब कि प्राचीन प्रचेता एक सुन्दर स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए वायु, जल और अन्न आदि को दोषों के रहित होने के उपाय यज्ञों के द्वारा बतलाता है जैसा कि गीता के तीसरे अध्याय में कहा है कि अन्न से समस्त प्राणी उत्पन्न होते है, मेघ से अन्न उत्पन्न होते है। मेघ यज्ञ से उत्पन्न होता है और इस प्रकार यज्ञ से समस्त वस्तुयें उत्पन्न होती है।

अन्नाद् भवन्ति भूतानि,
पर्जन्यात् अन्नं सम्भवम्।
यज्ञात् भवति पर्जन्यः,
सर्वं यज्ञं समुद्भवम्॥

जब याजिक लोग यज्ञ करते है तो उस से मेघ उत्पन्न होते हैं, मेघों से हमे जल मिलता है, जल से अन्न उत्पन्न होते है। यज्ञ से वास्तव में सब से पूर्व वायु प्रदूषण दूर होता है। यज्ञ जिस स्थान पर भी प्रतिदिन होता है, उस स्थान के पास से गुजरने पर नासिका में स्वत. सुगन्ध आती है। इस पर कुछ लोगों का कहना है कि घी तथा अन्य महंगी सामग्री को जलाकर राख बना दिया

जाता है। यह आक्षेप सर्वथा अनुचित है क्योंकि जो वस्तु अग्नि में आहुत की जाती, अग्नि उसका भेदन करके हजारों गुणा उस को सूक्ष्म कर देता है। जैसे कि एक लाल मिर्च खाने वाला व्यक्ति अकेला जितनी मिर्च खाता उतनी मिर्चों को हवन कुण्ड की अग्नि में डाल दीजिये, उसके पश्चात् उसका परिणाम प्रत्यक्ष रूप में देखिये। वे मिर्च सैकड़ों व्यक्तियों के छीकने का कारण बन जायेंगी। इसी प्रकार घी और सामग्री से किया गया यज्ञ सब पहले वायु प्रदूषण को उसके अनन्तर जल प्रदूषण को और अन्न के दोषों को दूर करता है इस लिए प्राचीन ऋषियों ने इन प्रदूषणो से से बचने हेतु पंच महायज्ञों को आवश्यक कर्त्तव्य कर्म बतयाया था अर्थात् इन पाच यज्ञों के करने से स्वर्ग प्राप्ति या पुण्य नहीं है अपितु यह प्रत्येक मनुष्य का पवित्र कर्त्तव्य है। हम प्रतिदिन मल-मूत्र करते हैं अन्य श्वास आदि के द्वारा प्रदूषण को फैलाते है, इन प्रदूषणो के शमन हेतु प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक रूपमें इन पंचमहायज्ञों का अनुष्ठान करना होगा। वास्तव में यदि आज ३ अरब के लगभग मनुष्य इस वसुन्धरा पर रहते हैं यदि हम सभी अपने द्वारा उत्पन्न होने वाले प्रदूषण को दूर करने हेतु प्रतिदिन हवन-यज्ञ करे तो प्रदूषण की समस्या एक दम दूर हो सकती है।

वायु और जल आदि के प्रदूषण से अनेक रोग वंशानुक्रमण से अगली पीढ़ियों चले जाते हैं। वेद में उन रोगों का निवारण वायु के शुद्ध होने से लिखा है। उन रोगों के कृमि वायु में से यज्ञ के द्वारा नष्ट किये जाते हैं, ऐसा विधान अथर्व वेद के अनेक मन्त्रों में क्षय रोग के निवारण के लिए यज्ञों का विधान किया है। बड़े-२ यज्ञों में विशेष प्रकार की हवि के आहुत करने से वायु मे जितने भी क्षय रोग या अन्य रोगों के कृमि है, उनको यज्ञ को विशाल शिला प्रत्येक कृमि को नष्ट कर देगी।[1] उन यज्ञों से वायु के दिखाई देने वाले और न देने वाले कृमिगण को नष्ट कर दिया है।[2] सूर्य प्रकाश से खुले हुए स्थान में और हवन गैस से क्षय कीटाणु मर जाते है, इससे उनके अधिक फैलाव में रुकावट पड़ती है। परन्तु जहां पर यज्ञ से क्षय कीटाणु वायु में से नष्ट नहीं किये जाते है वहां क्षय किटाणु अधिक समय तक जीवित रहते हैं।[3] इसी प्रकार आगे अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त ११ में सभी मन्त्रों मे चिकित्सक रोगी को

---

१. इन्द्रस्य या महीद्रषात् क्रिमे विश्वस्य तर्हणी। तया पिनष्मि स क्रिमीन दृष्टा इव।
अथर्व० २ कां सू० ३१ मं० १॥

२. दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरुरुमतृहम्। अल्गाण्डून्त्सर्वाञ्छलुनान क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि।
२ कां सू० ३१ मन्त्र—२॥

३. अथर्व कां—२ सू० ३१ मन्त्र ३, ४, ५ इसी प्रकार काण्ड २ सूक्त ३२ सूक्त ३३ के सभी मन्त्र द्रष्टव्य हैं।

कहता है कि हे प्राणी तुझ को सुख के साथ चिर-काल तक जीने के लिए राज रोग एवं अन्य सभी रोगों से वायु को शुद्ध कर के नाना प्रकार की आहुतियों द्वारा यज्ञ से तुझे पूर्ण निरोगी करता हुआ समस्त रोगों से छुड़ाता हूं। हवन यज्ञ से वायु के समस्त रोगों को दूर कर के हे रोगी मैं तेरे अन्दर से समस्त रोगों को दूर कर के ही रहूंगा। ये वायु में रहने वाले कृमि बड़े-२ यज्ञों के द्वारा ही नष्ट किये जा सकते हैं।[1]

जैसा कि हम ऊपर देख आये हैं कि यज्ञ से केवल वायु प्रदूषण ही दूर नहीं होता है अपितु यज्ञों से जल प्रदूषण पूर्ण रूपेण दूर होता है क्योंकि जो मेघ यज्ञों द्वारा जल बरसाते हैं वे जल शुद्ध और रोगो को दूर करने वाले तथा औषधि का कार्य करते है। यज्ञों से प्राप्त जल क्रमश: अमृत, औषधि कल्याणतम, रस, आनन्द दायक, इन जलों में समस्त औषधियां जल से औषधियां मांगता हूं, वास्तव में ये जल ही औषधि है।[2] ये उपर्युक्त जल के गुण हैं, उस जल के जो प्रदूषण से रहित है और नाना प्रकार के यज्ञों से प्राप्त हुआ है। जब जल यज्ञाग्नि से अपने प्रदूषण से रहित है तब अथर्ववेद के काण्ड–१ सूक्त ३३ के चार मन्त्रों में कहा गया है। कि ये जल अब यज्ञों की अग्नि से जल सुवर्ण के समान चमकने वाले वर्ण से युक्त शुद्ध और पवित्र जल अपनी पवित्रता से अग्नि को धारण करते हैं। इन जलो में से वरुण राजा घूमता है, वह कर्मों का फल देता है। जिन मेघों ने विद्युत रूपी अग्नि को गर्भ रूप में धारण किया है उन मेघों का हमें सुख और आरोग्य देने वाला हो। यज्ञाग्नि से उत्पन्न ये पर्जन्य रोग रहित शुद्ध जल की वृष्टि करने वाले हों, जिस से कि रोग रहित समाज का निर्माण हो सके।[3]

इन उपर्युक्त मन्त्रो से जल प्रदूषण को दूर करने का उपाय भी यज्ञो को बतलाया है। यह पवित्र जल हमारी खाद्य सामग्री को उत्पन्न करता है तो अन्न-दुग्ध फल आदि भी सभी रोग रहित

---

१. मुञ्चामित्वा हविषा जीवनाय कमज्ञात यक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ग्राहि जेग्राह यज्ञतेदेन तस्या इन्द्राग्निप्रमु मुक्त मेनम् ॥ अथर्व० का० ३ सू० ११ मं० १ ॥

२. अथर्ववेद काण्ड १–सू०६ अप्सु अमृतम्—१–४–४ अप्सु भेषजम्(१–४–४) शिवतमरसः (१-५-२) आप मयोभुवः (१–५–२) अप्सु विश्वानि भेषजानि १–६–२ आपपृणी भेषजम् (१–६–३) आपो याचामि भेषजम् (१–५–४)

३. (क) हिरण्यवर्णा शुचयपावका..............अथर्व—काण्ड—१ सूक्त—३३–मन्त्र १

(ख) यासां राजा............	,,	,,	,,	२
(ग) यासां देवा	,,	,	,,	३
(घ) शिवेनमा चक्षुषा	,,	,,	,,	४

उत्पन्न होंगे। आजकल जल प्रदूषण की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं है। यदि थोड़ा सा है भी तो पीने के जल की ओर तो है परन्तु अन्न आदि हेतु जो जल प्रयुक्त किया जाता है वह एकदम नाना प्रकार के दोषों से युक्त होता है। उससे सब्जी एव अन्न आदि मात्रा में भले ही अधिक उत्पन्न हो जाते है परन्तु उन में न तो पहले जैसा स्वाद है और वे अनेक प्रकार के रोगो को उत्पन्न करते हैं जो अन्न यज्ञों से उत्पन्न किया जाता है, वह विकार एव प्रदूषण रहित होता है।

वायु प्रदूषण को दूर करने का अन्य उपाय भी प्राचीन साहित्य में उपलब्ध होता है। वह है वनों एवं वनस्पतियों को अधिक से अधिक लगाना। आज भी परम्परा से भारतीय चिन्तना मे हरे वृक्ष या हरि लता को काटना पाप समझा जाता है। कहा जाता है कि जो हरे भरे वृक्षों को काटता है समझो अपने वंश को काटता है। यह भी किव दन्ती है जो युवा वृक्षों एव लताओ को कटवाता है वह अगले जन्म के अन्दर नि:सन्तान रहता है। ये उपयुक्त सभी कहावते इस बात की द्यौतिक हैं कि भारतीय संस्कृति में वृक्षों को लगाने का महत्व बहुत अधिक रहा है। उन वृक्षों को अधिक लगाने का आदेश है कि जो वृक्ष एवं वनस्पति औषधि के रूप में अधिक प्रयोग में आते हों। वास्तव मे आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्रियो की मान्यता है कि विश्व मे कोई भी वृक्ष एवं वनस्पति नही है जो किसी न किसी औषधि के काम न आती हो। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में अनेक सूक्त एव मन्त्रो मे उन वृक्षो तथा वनस्पतियों को लगाने का विधान है। अथर्ववेद के काण्ड १–सूक्त २४ में नाना प्रकार की वनस्पतियो का वर्णन इस प्रकार किया है कि सुपर्ण सूर्य औषधियों एव वनस्पतियो को पित्त प्रदान करता है ये वनस्पतियां बहुत अधिक मात्रा मे लगी हो तो रंग रूप में सुधार करती हैं। आसरी नाम की वनस्पति कुष्ठ रोग मे औषधि का करती है।[१]

जिन पौधों के सयोग से वनस्पति बनती है। वे पौधे अर्थात् उसके माता पिता रूपी पौधे भी) शरीर के रंग को सुन्दर करने वाले है। इस लिए इन वनस्पतियों को तू प्रचुर मात्रा में उत्पन्न कर।[२] यह श्यामा वनस्पति शरीर की चमड़ी का रग ठीक करने वाली है।

इसी प्रकार अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में भी नाना प्रकार के वृक्षों से परिपूर्ण राष्ट्र की कल्पना की गई है। वास्तव में कोई भी ग्राम वृक्षों के झुरमुठों के कारण दूरसे दिखाई नही पड़ना चाहिए।

---

१. सुपर्णो जात: प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ।
तदासुरी युधाजिता रूपं चक्रे वनस्पतीन्॥ अथर्व १।२४।१॥

२. सरूपा नाम ते माता सरूपो नामते पिता।
सरूपकृत्त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृषि॥ अ० १-२४-३॥

प्राचीन भारत में बनों का इतना बोल बाला था कि चारों ओर वनाही वन दृष्टिगोचर होते थे, उस समय किसी भी प्रकार के वायु प्रदूषण का भय नही था।

पर्यावरण का द्वितीय भाग है सामाजिक अध्यात्म जगत्। यदि विश्व मे मानसिक तनाव बना रहेगा तो सामूहिक मनस् तत्व विकृत एव प्रदूषण वाला होगा वायु प्रदूषण के दूर करने मात्र से समस्त पर्यावरण शुद्ध नहीं हो सकता है। इसके लिए प्राचीन साहित्य में संस्कारों का वर्णन आता है। भारतीय विचार वीथि मे जब भी नवदम्पत्ति के मन मे पुत्र की इच्छा होती थी तभी गर्भधान संस्कार के द्वारा उत्पन्न होने वाले पुत्र एवं पुत्री हेतु पयावरण को निर्मित करने का विधान है। वास्तव मे इन १६संस्कारों का धार्मिक महत्व नही है अपितु हम समाज का निर्माण करना चाहते हैं, ये संस्कार उसके निमित्त पर्यावरण का निर्माण करते है। सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक एवं समस्त विश्व का पर्यावरण समाज प्रदूषणों से रहित होगा तभी स्वस्थ एवं सुन्दर समाज का निर्माण हो सकता है। पर्यावरण संरक्षण के जो उपाय प्राचीन वाङ्मय में बतलाये हैं उनको आज का समाज अपना ले तो विश्व का कल्याण हो सकता है।

---

१. अथर्व—काण्ड १–सूक्त २४–मन्त्र २, ४, आदि मन्त्र।

* * *

कुछ ज्ञान की बातें—

- संजय कुमार

१—सबसे छोट स्तनी	छछूंदर
२—सबसे बडा तथा भारी स्तनी	नीली ह्वेल (समुद्री)
३—सबसे बडा स्थली स्तनी	अफ्रीकन हाथी
४—सबसे बडा सर्प	पाइथन (मलाया)
५—सबसे बड़ा जीवित सरीसृप	टरटिल (समुद्री)
६—सबसे बड़ा जीवित पक्षी	शुतुर्मुग
७—सबसे छोटा पक्षी	क्यूबा का हमिंग पक्षी
८—सबसे बडा कपि	गोरिला (अफ्रीका)
९—सबसे बुद्धिमान कपि	चिम्पेन्जी (अफ्रीका)
१०—सबसे छोटा मनु कपि	गिब्बन
११—सबसे बुद्धिमान होमिनिडा	मनुष्य
१२—सबसे तेज दौडने वाला प्राणि	चीता
१३—सबसे तेज उडने वाला पक्षी	जापान का कटि पुन्छ पक्षी
१४—सबसे छोटा उडनहीन पक्षी	किवी (आस्ट्रेलिया)
१५—सबसे ऊंचा स्तनी	जिराफ (अफ्रीका)
१६—सबसे आदि स्तनी	एकिडना तथा डकबिल प्लेटीपस
१७—अंडप्रजक स्तनी	एकडिना तथा डकबिल प्लेटिपस
१८—अंड जरायुज स्तनी	कंगारु
१९—सबसे व्यस्त अंग	हृदय
२०—सबसे बड़ी मांस पेशी	धड़ की ग्लूरियस मैक्सीमस
२१—सबसे छोटी अस्थि	कर्ण की स्टेप
२२—सबसे बड़ी अस्थि	फिमर (जंघा में)
२३—सबसे लम्बी कोशिका	तन्त्रिका कोशिका
२४—सबसे बड़ी छिपकली	वेरेनस (कौमौडौस)
२५—एकमात्र बिषैली छिपकली	हेलोडर्मा

मानव शरीर की माया

गोपाल शर्मा 'पंडित'

मानव देह पच तत्वो से निर्मित है। ग्राज की उपभोगवादी दृष्टि से इसकी कीमत कितनी है, क्या ग्राप इसका ग्रनुमान लगा सकते है? इसमें इतनी चर्बी है कि जिसके द्वारा सात टिक्कियां साबुन की बनाई जा सकती हैं, इतना चूना है कि एक छोटे कमरे में पुताई की जा सके, ग्रौर कार्बन इतना है कि मुश्किल से १३-१४ कोयले की बोरी भर जाएगी, ग्रौर ग्रग्नि तत्व यानि फॉसफोरस इतना है कि २२००माचिसे बनाई जा सकती है। दुनियां भर की हर ग्राफत से लोहा लेने वाले मानव शरीर में लोहा केवल इतना है कि एक इच कील बनाई जा सके। बाकी एक चम्मच भर गन्धक के ग्रलावा शेष धातुएं पानीदार इतनी हैं कि मानव देह का ७० प्रतिशत पानी है। इस मानव शरीर रूपी मशीन को जीवन भर चलाने में, ग्रौसतन ५० टन खाद्य सामग्री ग्रौर ११००० गैलन पेय पदार्थ, खर्च होता है।

ग्रब ग्राप ही ग्रंदाजा लगा सकते हैं कि इस काया की माया, कितनी विचित्र है। जन्म के समय शिशु में कुल ३०५ हड्डियां होती है, जो बड़े होने पर घटकर लगभग २०५ रह जाती हैं, बाकी का क्या हुग्रा ? कुछ हड्डियां बाद में जुड़ जाती हैं, इन हड्डियों में १०० जोड होते हैं ग्रौर ६५० पेशियां इन्हें हरकत में लाती हैं। पेशी ग्रौर हड्डी को जोड़ने वाली टेंडन ८ टन प्रति ६.४५ वर्ग से.मी दबाव वहनकर सकती हैं। चलते समय जांघ की हड्डियों पर कोई ग्राधा टन प्रति ६.४५ वर्ग से. मी. दबाव पड़ता है। फिर भी शहरी ग्रादमी जीवन भर कोई १६ हजार किलोमीटर ग्रौर ग्रामीण ४८ हजार किलोमीटर पैदल चल लेता हैं।

एक सफर देह के भीतर भी चलता है। धमनियो,शिराग्रों ग्रौर कोशिकाग्रों को मिलाकर हमारे देह की सभी नसों कीलम्बाई लगभग९६५४०कि० की बैठती है। प्रति मिन्ट१० पिंट खून फिकता हैं। ये प्राण वायु ग्रोक्सीजन को धारण कर रग-रग में पहुँचाने का कार्य करती है. रक्त में मौजूद लगभग २५ खरब रक्ताणु, है, ग्रौर रोगाणु से लड़ने को तैयार रहती है श्वेताणु। ग्राखरी सांस लेने तक हम कोई ५ ग्ररब बार सांस ले चुकते हैं।

ये तमाम ग्रंग वाटरप्रूफ थैले-त्वचा में सजा दिये गये हैं, जो कोई २० वर्ग फुट से ज्यादा लंबी चौडी नही है। यह स्पर्शेन्द्रिय भी है। त्वचा मे ४० लाख स्पर्शसंवेदी कोशिकाएं होती हैं ग्रौर सिर के सहित ५० लाख

बाल होते हैं । जीवन का भरपूर स्वाद लेने के लिए ९ हजार स्वाद कलिकाए होती है ।

इस काया में जीवन भर कायांतरण चलना रहना है, त्वचा झड कर तीन साल में नई हो जाती है । खून की सफेद कोशिका का जीवन चक्र तो १२ घटे का ही होता है । रक्ताणु १२० दिन चलती है । बाकी सभी कोशिकाएं तो मरती जनमती रहती है । लगभग सात साल में सारी देह कोशिकाएं किशोरावस्था के बाद,मस्तिष्क की कोशिकाओं को छोड़कर; नई हो जाती हैं । बढते नाखुनो को काटने का मतलब है कि १० हजार कोशिकाओं का कत्ल । मुंह के भीतर का पतला स्तर तो खान-पान के साथ घुल मिल कर रोज पचता रहता है, और उसकी जगह नया स्तर बनता रहता है । यही हाल आंत के स्तर का भी है जो कि ७ अरब कोशिकाओ का होता है । शरीर के भीतर जन्म-मरण का यह खेल बराबर चलता रहता है । शैशव से बालपन, फिर किशोरा-वस्था और यौवन तथा प्रौढावस्था के बाद की अन्तिम वृद्धावस्था मे इतना कुछ बदल जाता है, जैसे एक जन्म मे ४-५ बाद पुर्नजन्म हुआ हो । शरीर की माया बडी विचित्र ।

❀ ❀ ❀

आयोडीन :—जब शरीर मे आयोडीन की कमी हो जाती है तो घेघा (गोइटर)रोग जिसमे गला बढ़ जाता है, हो जाता । वह रोग अधिकतर पहाडी इलाकों के लोगों में पाता जाता है आयोडीन बारिश होने पर पानी के साथ घुलकर नदीं और समुद्रों में बह जाता है । आयोडीन के लिए हमे "अमरूद, बैंगन, काला नमक केला आदि का अधिक सेवन करना चाहिए ।

आंखों में भेंगापन

लोकेश कुमार राले

आँखों में भेंगापन एक सामान्य रोग है। यह किसी भी आयु में हो सकता है, पर बच्चों मे यह बडों की अपेक्षा ज्यादा होता है। एक विशेष प्रकार की मांस पेशियां जो कि आंखों को चलाती हैं, यदि पूर्णतया विकसित न हों पाये तो आंखों में भेंगापन हो जाता है।

सामान्यता जब कोई अपनी आंख दांयी या बांयी ओर घुमाता है तो दोनों आखों की पुतलियां समान रूप से घूमती हैं, परन्तु भेंगापन होने पर दोनों आंखों में से एक आंख कुछ 'सुस्त' रहती है। इसी कारण जब कोई व्यक्ति किसी ओर देखना है तो उसकी एक (सही) आंख तो पूरी तरह घूम जाती है परन्तु सुस्त आंख नही घूम पाती तब उसका भेंगापन स्पष्ट हो जाता है।

भेंगापन एक आंख में या दोनों आंखों में भी हो सकता है, परन्तु सभी कार्यों में भेंगा बालक एक हो आंख का प्रयोग करता है, क्योंकि जब आंखों की गति में समानता नहीं रहती, तब एक ही वस्तु पर दोनों आंखे नहीं जम पाती। एक आंख (ठीक आंख) तो उस वस्तु को देख रही होती है पर दूसरी आंख (सुस्त आंख) की नजर उस वस्तु पर न होकर कहीं और होती है। सुस्त आंख द्वारा दिमाग पर बने चिन्ह पर दिमाग ध्यान नहीं देता। अत: धीरे-धीरे सुस्त आंख को नजर कमजोर होती चली जाती है। यहां तक कि यदि इसका इलाज न कराया जाए तो सुस्त आंख की रोशनी बिल्कुल ही समाप्त हो सकती है।

प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष, दो प्रकार का भेंगापन होता है। प्रत्यक्ष भेंगेपन में आंखों की असमानता दूर से ही पता चल जाती है। प्रत्यक्ष भेंगापन कान तथा आंख पर चोट लगने से भी हो जाता है। इसके अतिरिक्त आंख का बहना आंख की मांसपेशियों को प्रभावित कर प्रत्यक्ष भेंगापन पैदा करता है।

अप्रत्यक्ष भेंगापन देखने से मालूम नही पड़ता। इसमे बच्चे की आंख से पानी बहता है तथा कुछ देर कोई चीज ध्यान से देखने पर धुधला दिखने लगता है। यदि अप्रत्यक्ष भेंगेपन की समय पर चिकित्सा न हो पाये तो कुछ दिन बाद वह भी प्रत्यक्ष भेंगेपन में परिवर्तित हो जाता है।

भेंगेपन के कारण—

बच्चो को कम उम्र में स्कूल भेजना, आहार

में पोषक तत्वों की कमी, सही ढंग से बैठकर न पढ़ना अपितु लेटकर पढ़ना, कम प्रकाश में पढ़ना तथा बचपन से ही नजदीक से टेलीविजन देखना आदि । प्रत्यक्ष भेंगेपन का बालक के सौंदर्य तथा व्यक्तित्व पर भी प्रभाव पडता है । भेंगे बालक को विद्यालय में तरह-तरह के व्यंग्य तथा कटाक्षों का शिकार होना पड़ता है । इस प्रकार उस के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास न हो पाने के कारण उस बालक के स्वभाव मे चिड़चिड़ा तथा गुस्सापन आ जाता है ।

सावधानियां—

बचपन से ही बच्चों की आंखों की समय-२ पर ठीक जाच करानी चाहिए । बच्चों को सही ढंग से बैठकर पढने को आदत डालनी चाहिए । बच्चों की कनपटो पर कभी भी थप्पड़ आदि नहीं मारना चाहिए, यदि फिर भी आंख या कनपटो पर चोट लग गई है तथा यदि बच्चे की आंख या कान में दर्द है तो उसका समुचित इलाज कराना चाहिए । बच्चों को पौष्टिक आहार जैसे हरी सब्जिया, फल, दूध, अडे आदि का सेवन कराना चाहिए । तथा बच्चों को कभी भी ५ वर्ष से कम की आयु में स्कूल में नही भेजना चाहिए ।

चिकित्सा—

यदि भेंगापन पूर्णतया विकसित न हुआ हो तो केवल विशेष प्रकार के चश्मों के प्रयोग से घर पर कराये जा सकने वाले व्यायामों द्वारा इसकी चिकित्सा की जा सकती है । इसके लिए अस्पतालों में ऐंब्लायस्कोप नाम का एक विशेष उपकरण होता है । परन्तु यदि भेंगापन पूर्णतया विकसित हो चुका हो तो इसका इलाज केवल शल्यक्रिया द्वारा ही हो सकता है । शल्यक्रिया के लिए सही उम्र ६ वर्ष से पूर्व है । ६ वर्ष की उम्र से पूर्व किये गये आपरेशन शत-प्रतिशत सफल रहते है तथा बाद मे कराने पर परिणाम इतने अच्छे नहीं आते । यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि भेंगेपन की चिकित्सा तो किसी भी उम्र में सम्भव है, पर एक बार गई नजर कभी वापस नही आ सकती ।

❀ ❀ ❀

चांद पर जीवन क्यों नही ?

अब जबकि इन्सान ने चाद पर पहुँच कर उसके तल का पता लगा लिया है, इसलिए उसे अब चांद के बारे में अनेकों बातों का भी पता चल गया है, किन्तु एक बात तो मनुष्य को चांद पर पहुंचने से पहले भी ज्ञात थी और वह यह थी कि चांद पर कोई जीवन नहीं है।

चाद पर वस्तुत: कोई वायुमण्डल नही है। अन्तरिक्ष यात्री भो इस बात को जानते थे. क्योंकि चांद पर कोई साध्य-समय नही है। धरती पर अन्धकार धोरे-धीरे आता है क्योंकि हवा सूर्यास्त हो जाने के बाद भी सूर्य के प्रकाश को प्रतिम्बित करती है लेकिन चांद पर, एक क्षण सूर्य की धूप होती है तो दूसरे ही क्षण रात आ जाती है।

चांद पर हवा का न होने का अर्थ है कि चांद सूर्य की किरणों से रक्षित नही है। सूर्य अपनो गर्मी और प्रकाश-विकिरणें भेजता है। धरती पर जीवन गर्मी और प्रकाश पर निर्भर करता है किन्तु सूर्य खतरनाक किस्म की विकिरणें भी भेजता है। धरती का वायुमण्डल उनसे हमारी रक्षा करता है लेकिन चांद पर ऐसी विकिरणों को रोकने के लिए कोई वायुमण्डल नही है। सूर्य की सभी किरणें चन्द्र तल पर पडती है।

चूँकि चांद पर कोई वायुमण्डल नही है, इसलिए चांद का तल भी या तो अत्यन्त गर्म होता है या अत्यन्त ठण्डा। जब चांद घूमता है तो इसका वह भाग गर्म हो जाता है जिस पर सूर्य की किरणें पड़तो है। तब वहां का तापमान १५०°c से भी बढ़ जाता है। यह उबलते पानी से भो अधिक गर्म होता है। यह गर्मी दो सप्ताह तक बनी रहती है।

इसके बाद रात पड़ जाती है यह भी दो सप्ताहों तक रहती है रात में तापमान शून्य से भी नीचे १२५° तक गिर जाता है। यह दक्षिणी ध्रुव के तापमान से भी दो गुणा अधिक ठंडा होता है।

इन परिस्थितियो में चान्द पर किसी प्रकार का कोई जीवन नही हो सकता।

—सुशील कुमार

न्यायालय में तो झूठा बच सकता है
किन्तु
विज्ञान के आगे घुटने टेक देता है।

महेश चन्द्र जोशी

हमारे देश या विदेश में सभी व्यक्ति झूठ बोलते हैं। पूरे ससार मे न तो कोई धर्मराज युधिष्ठर न ही सत्यवादी हरिशचन्द्र बचा है। झूठ बोलने की बात हर समय ही हमारे आगे गुजरती रहती है। झूठ को भी दो प्रकार का माना जा सकता है एक झूठ तो वह जिसके द्वारा सामान्य जीवन मे असर नही पडता है जिसका उपयोग विश्व का प्रत्येक मनुष्य करता है माना घूमते हुए कही मित्र मिल गये तथा बाजार में ही उनके साथ जलपान कर लिया तो घर में पूछा जाय कि भोजन नही करना तो उत्तर सभी पर एक आज न जाने क्यों भूख लग रही है ? इसी तरह के झूठ इसके अन्तंगत आते है। दूसरी तरह का झूठ वह हुआ जिसके द्वारा किसी व्यक्ति की मृत्यु या काफी नुकसान हो जाये कि वह कभी उठ न सके। यह झूठ न्यायालय में झूठे सबूत पेश करके देखने को मिलता है।

झूठ बोलने की प्रथा तो प्राचीन काल से ही चली आ रही है। प्राचीन काल में इस झूठ का पता लगाने का तरीका था जो आजकल भी कही-कही आदिवासियों में प्रयुक्त होता है। इसके अनुसार सदिग्ध व्यक्ति को एक मुठ्ठी चावल चबाकर थूकना पडता है। यदि थूकने के पश्चात् चावल सूखा हुआ निकलता है तो वह व्यक्ति अपराधी है। क्योकि घबराहट के कारण अपराधी का गला सूख जाता है, मुख में लार की मात्रा कम हो जाती है। इसके विपरीत यदि उस व्यक्ति का अन्त:करण शुद्ध है तब उसके मुख से निकलने वाले चावल पहले की अपेक्षाकृत काफी गीले होते है। इसी सिद्धान्त के आधार पर वैज्ञानिको ने 'लाइ-डिटेक्टर' नामक मशीन यानी झूठ पकड़ने की मशीन का आविष्कार किया।

मानव मे कुछ क्रियाए इस प्रकार की होती है जो उसके नियन्त्रण से बाहर होती है किसी भी डर के कारण हृदय की धडकन का कम या अधिक होना, श्वास का फूलना या रुकना रक्त चाप का बढ़ना ऐसी क्रियाएं है जिन पर मनुष्य का नियंत्रण नही है। ये क्रियाएं मानसिक परे-

परेशानियो के कारण घट या बढ़ जाती है यदि कोई व्यक्ति यह सोचे कि भय के समय हृदय की धडकन रोक ले यह मुश्किल है।

मनोवैज्ञानिकों ने इस बात का पता लगाया कि जब कोई झूठ बोलता है तो उसकी मानसिक स्थिति मे पहले की अपेक्षाकृत अन्तर आ जाता है। क्योंकि उसका झूठ कही न कही कभी न कभी पकडा ना जाये? इसका उसे भय रहता है चाहे वह झूठ बोलकर अपने कार्य मे सफल हो जाये किन्तु उसके अन्दर मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाता है। यदि सत्यता छिपाने के लिए कोई व्यक्ति झूठ बोले तो उसके रक्त चाप, दिल की धडकन तथा श्वास की गति में परिवर्तन आ जाता है यदि उसकी मानसिक स्थिति को मापा जाये तो झूठ बोलते समय सादिग्ध व्यक्ति की मानसिक उत्तेजना के कारण उस व्यक्ति की शारीरिक क्रिया मे अन्तर आ जाता है। जिसे यन्त्र को सहायता से मापा जा सकता है। यह 'लाई डिटेक्टर' का सिद्धान्त है।

दशवी शताब्दी के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक चिकित्सज्ञ अबू अली इब्न सिना ने नाडी के परिक्षण की सहायता से मानसिक हालत का पता करने के लिए विस्तार पूर्वक वर्णन किया। उसके अनुसार यदि किसी व्यक्ति की नाडी पकडकर प्रश्न किया जाये तव यदि वह झूठ बोलेगा तो उसकी नाडी की गति में परिवर्तन हो जायगा।

यह कथा भी प्रचलित है कि बुखारा के राजकुमार को प्रेम रोग हो गया था जिसका किसी को पता नही था जिसके कारण उनकी नींद तथा भूख उड गई थी। बडे-बड़े मानसिक विशेषज्ञ जो कुछ नही कर पाये किन्तु अबू अली इब्न सिना ने उनके मन की बात भांप ली तथा एक सेवक से नगर की समस्त गलियो के नाम का सहत्र पाठ करने को कहा जिनमें से एक गली के नाम पर राजकुमार की मानसिक परिस्थिति मे परिवर्तन हो गया। उन्होने सब बात राजा को बता दी।

'लाइ डिटेक्टर' में भी रक्त-चाप, श्वास प्रक्रिया तथा हृदय की धडकन को मापा जाता है। उस व्यक्ति को जिससे यह पता लगाना है कि वह झूठ या सच बोल रहा है इसके लिए सादिग्ध व्यक्ति की आराम देय कुर्सी में बैठाकर उसकी बाह मे रक्त चाप नापने के यंत्र की रबर को लपेट देते है तथा उसके सीने मे श्वास प्रक्रिया को मापने के लिए न्यूमोग्राफ नामक यत्र मे स्थित रबर की नली को बांध देते हैं। श्वास लेते समय वह नली सुकडती व फैलती रहती है। इन दोनों के माप इलैक्ट्रानिक उपकरण की सहायता से ग्राफ पेपर पर की जाती है।

अपराधी व्यक्ति से विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछे जाते है। प्रथम चरण में प्रश्न महत्व हीन पूछे जाते है जिसमे अपराधी का नाम, पता आयु इत्यादि का पता किया जाता है अर्थात् परिचय किया जाता हैं।

दूसरे प्रकार के प्रश्न में अपराध सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते है जिनमें चोरी के कारण हत्या के कारण ? तथा कृत काण्ड से सम्बिधित व्यक्तियों के बारे में पूछा जाता है।

तृतीय प्रकार के प्रश्नों में महत्वपूर्ण प्रश्न पूछे जाते है। जिसमे कृत हत्या की लाश को फेकने की जगह-२ चोरी के धन को छिपाने की जगह इत्यादि प्रकार के प्रश्न पूछे जाते है।

इन प्रश्नों को पूछने पर अपराधी व्यक्ति होगा तो उसकी हृदय गति, रक्त चाप तथा श्वास लेने की दर में परिवर्तन आ जाता है। यदि वह अपराधी नही है तो उसकी मानसिक स्थिति मे परिवर्तन नहीं होगा।

यदि इस बात का पता मुझे हुए अपराधी को चल जाये तब तो वह इसके प्रतिरोध को पहले ही सोचकर बनायेगा। किन्तु इसके पश्चात् भी मानसिक नियन्त्रण नहीं होता। इस बात का प्रयोग एक वैज्ञानिक ने अपने मित्र के समक्ष कई वस्त्र पसन्द के लिए दिखाए जिनमें से एक पसन्द करना था तथा बाद में उससे कौन सा वस्त्र पसंद है उसके बारे में पूछा उसने सभी वस्त्रों को ना तथा जो सबसे खराब था उसे हाँ कहा। वैज्ञानिक ने पहले ही विपरीत बोलने को कहा था उन दोनों वस्त्रों के उत्तर के समय उसको मासिक स्थिति मे परिवर्तन आ जाता है इससे इस बात का पता चलता है कि कितना भी झूठ को छिपाया जाये वह नही छिप पाता है।

यदि कोई अपराधीं इस लाइ डिटेक्टर' द्वारा परीक्षण नहीं कराना चाहता तो वह निश्चित ही अपराधी है। कई अपराधी तो जबाब तक नही देते तथा उनको इस प्रकार के प्रश्न सुनाये जाये जिससे उनमे तनाव उत्पन्न हो जाये।

एक व्यक्ति जिसने अपनी पत्नी के कम दहेज देने के कारण हत्याकर दी थी। लाश भी उसने इस प्रकार लुप्त करा दी थी कि गुप्तचर विभाग भी परेशान हो गया वह सत्यता को छिपाने के लिए यह कहकर झूठ बोलता था कि उसकी पत्नी उसे छोडकर भाग गयी है। उसे 'लाइ डिटेक्टर' में बैठाकर अधिकारियों ने उसके सामने नगर का मानचित्र फैला दिया तथा वे नगर के प्रत्येक भाग में पेंसिल रख कर यह पूछते थे तुमने लाश यहां छिपायी है। उसने कोई जवाब नही दिया जिस स्थान पर लाश छिपायी थी मानचित्र मे पेंसिल जैसे-२ उस ओर आती गयी उसके हृदय की धडकन तथा श्वास की रफ्तार बढ़ती गयी। इस तरह अधिकारियों ने लाश का पता लगा अपराधी को सजा दी। यह तो केवल उदाहरण मात्र है।

इस तरह इस ''लाइ डिटेक्टर' ने गुप्तचर विभाग को अपराध शाखा को काफी सहायता दी है। जब अपराधी को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि उसका झूठ नहीं छिपसकता तो वह ईमानदारी मे सब कुछ बता देता है।

फिर भी यह पाया गया कि जिसने अपराध नहीं किया है वह बिना किसी डर के प्रश्नों का उत्तर देता है। किन्तु अपराधी हा और ना का जवाब देने में भी हिचकिचात है तथा काफी सोच विचार कर प्रश्न के उत्तर को देता है। इसमें इस बात का भी ज्ञात होता है कि अपराधी पहले प्रश्न के उत्तर सिद्ध करने के लिए झूठ बता रहा है। जब अपराधी अपने घुटने टेक देता है, तब यंत्र उसके में मानसिक तनाव की समाप्ति का भी संकेत करता है। यदि अपराधी अपराध स्वीकार करने के बाद प्रश्नों के उत्तर पूछे जाये तब वह उनके उत्तर सही देता है क्योंकि अब वह झूठ नही बोल रहा है।

इस 'लाड डिटेक्टर' के द्वारा गुप्तचर विभाग को अत्यधिक सहायता मिल सकती है तथा यदि ये ही यन्त्र भारत के न्यायालय में लग जाये तो झूठे सबूत तैयार करने वालो को सबूत तैयार करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इसके द्वारा जो निरपराधी है वे अपराध के मुंह से बच जायेंगे दूध का दूध पानी का पानी सभी जनता के सामने निकल जायेगा।

हमारे भोजन में अन्य तत्वों के समान खनिज तत्वों का बड़ा योगदान है। शरीर का १४वां भाग इन्हीं लवणों से बना है। हमारे शरीर में खनिज लवण अपेक्षाकृत कम मात्रा में विद्यमान हैं परन्तु उनका इतनी मात्रा में बना रहना शरीर की महत्वपूर्ण क्रियाओं के लिए अति आवश्यक है। "खनिज लवण हमारे शरीर की रोगों से रक्षा करते हैं। पाचन शक्ति बढ़ाते हैं तथा नये निर्माण में सहायक होते हैं" शरीर के लिए आवश्यक इन खनिज लवणों की संख्या "१२ है, जिनमें मुख्य खनिज पदार्थ आयरन, कैलशियम फास्फोरस, आयोडीन आदि हैं।"

कैन्सर

अवधेश कुमार शर्मा

हर साल लाखों मानव एक खतरनाक बीमारी का शिकार हो जाते है। और इसी खतरनाक बीमारी से उनका स्वस्थ शरीर हमेशा हमेशा के लिए शान्त हो जाता है। इस भयाक्रांत बीमारी का नाम है 'कैन्सर'। यह बीमारी अत्यन्त तकलीफ देह और ला इलाज है। साइन्सदान तथा डाक्टर केवल से बैठे देखते रह जाते है। कैन्सर एक बीमारी का नाम नही है, यह करीब सौ रोगों से अधिक रोगों का एक समूह है। 'कैन्सर' शरीर के किसी भी हिस्से मे हो सकता है। बच्चे से लेकर बूढ़े तक, किसी भी उमर के मनुष्य को हो सकता है 'कैन्सर'। 'कैन्सर' शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द कैन्क्रम मे हुई है। 'कैन्सर' का मतलब होता है केकडा। केकड़े के दस पैर होते हैं। केकड़े की तरह इसकी पकड़ भी मजबूत होती है और केकड़े के पैरो की तरह इसकी शाखायें चारों तरफ फैली रहती हैं। इसलिए इसका नाम 'कैन्सर' रखा गया। अधिकतर व्यक्ति ऐसा समझते हैं कि वह कोई नया रोग है, जो इन्हीं सौ-पचास वर्षों मे पैदा हुआ है, पुराने जमाने में हुआ ही नही करता था, किन्तु यह धारणा गलत है। वह रोग हजारो वर्ष पहले भी हुआ था। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में कर्क अर्बुद आदि तथा अरबी में इस सरतान कहा जाता है। अभी तक वैज्ञानिको को इसके कारणो का पूरा पता नही है और न इस रोग का कोई सुनिश्चित इलाज है। 'कैन्सर' की बीमारी इस युग मे दिनों दिन बढती जा रही है। धारणा है कि गांव की बजाय यह शहरो मे ज्यादा होती है। इसलिए दूषित पर्यावरण को इसका एक मुख्य कारण माना जा रहा है। यह एक ऐसी व्याधि है जो ज्यादा बढने पर ही पहचानी जाती है, और फिर इसका इलाज प्राय असम्भव हो जाता है। अगर इसकी पहचान शुरु में ही जाए तो इसका इलाज सम्भव है। आजकल 'कैन्सर' के ऊपर लगातार परीक्षण चल रहे हैं। इसके कुछ लक्षण व रोक थाम को वैज्ञानिको ने बतलाया है।

कैन्सर क्या है ?

बड़े पैमाने पर को जा रही शोध के बावजूद 'कैंसर अभी भी एक कठिन रोग है। क्या कैन्सर कभी बीमारियो का एक समूह है ? क्या विषाणुओं द्वारा इसका पार्ट खेला जा सकता है ? इसका अभी तक कोई सन्तोष जनक उत्तर नही

मिला है। आज हम जो कुछ भी 'कैन्सर' के बारे में कह सकते हैं वह सच्चाई ही माना जाना चाहिए। हो सकता है 'कैन्सर' सम्बन्धी वर्तमान धारणा में उतनी ही असत्य सिद्ध हो जितनी आज से पचास वर्ष पूर्व के लोगों की मधुमेह के बारे में थी।

'कैन्सर' एक प्रकार की नवीन वृद्धि है। और एक दम्य ट्यूमर है। स्वस्थ अवस्था में शरीर के अस्थि जोड़ने वाले ऊतक, श्लेष्मकला आदि विभिन्न ऊतकों की बढ़ोतरी ऐसे नाजुक, सही आनुपातिक सन्तुलन में रखी जाती है कि कोई सी भी दूसरों के अपेक्षा सही प्रमाण से ज्यादा नहीं बढ़ सकती। सारी कोशिकायें सही मात्रा में रक्त प्राप्त करती है। वे अन्तः स्रावी ग्रन्थियों द्वारा तैयार किया हुआ हार्मोन नामक एक नियामक पदार्थ भी प्राप्त करती है। इसके अलावा स्नायुओं द्वारा भी इन कोशिकाओं की बढ़ोतरी नियन्त्रित की जाती है। सम्भव है, अज्ञात कारणवश नियन्त्रक व्यवस्था खंडित हो जाये और कुछ कोशिकाओं का समूह अचानक अपने सामान्य कर्त्तव्य करना बन्द कर दे, इसके बजाये अपनी मर्जी से बढ़ना शुरू कर दे। इस पुनर्निर्माण का शरीर की आवश्यकताओं से कोई सम्बन्ध नहीं होता और इसकी उपादेयता नहीं होती।

इसकी जीवन शक्ति सीमारहित और इसे धारण करने वाले शरीर से असम्बद्ध प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ—वसा कोशिकाओं का आधुर्द बड़ा होता चला जाता है। ये कैन्सर कोशिकाएँ अधिकतर उन्हीं ऊतकों जैसी रहती है जिनसे वे उत्पन्न होती हैं। लेकिन कभी-कभी वे आदिम युगीन कौशिकीय रूपों में प्रत्यावर्तित हो जाती है और उनमें पुनर्जनन सम्बन्धी घोर अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है और ट्यूमर शरीर में सब दिशाओं में फैलने लगता है।

ट्यूमर पड़ोसी अंगों पर अतिक्रमण करते हुए बढ़ते हैं। ये ट्यूमर दम्य कहलाते है। ये जब तक जीवनांगों पर नहीं होते, जीवन के लिए कोई खतरा नहीं बनते। लेकिन यदि वे मस्तिष्क में हों या आन्त्र नालिका अवरुद्ध कर ले तो शीघ्र ही बहुत गम्भीर लक्षण पैदा कर देते है। परन्तु 'कैन्सर' के ट्यूमर दुर्दम्य होते है। वे अपने आस पास के ऊतकों पर आक्रमण करते हुए और उनको नष्ट करते हुए बढ़ते है और वे रक्त वाहिनियों में रंग जाते है। विशेषतः एक बार शिराओं में रंग पाने में सफल होने पर ये शरीर के किसी भी हिस्से में पहुंच जाते है। जहाँ सैकेन्ड्री डिपोजिटस नाम के नव वृद्धि बीज होकर ये अन्य अर्बुद उत्पन्न कर देते हैं। ऐसा बहुधा फेफड़ों और लीवर में होता है क्योंकि शरीर का ज्यादातर खून इन अंगों में होकर प्रवाहित होता है।

अगर इस बात की पूरी जानकारी मिल जाए कि कैन्सर कोशिकाए सामान्य कोशिकाओं से

भिन्न किस प्रकार बनती है तो समस्या का बहु-ग्राम से निदान प्राप्त हो जाए कि 'कैन्सर' को क्या चीज पैदा करती है। असमान्य कोशिकाओं मे उनमे पोटेशियम बहुत ज्यादा होता है और कैल्शियम बहुत कम और यह कि उनमे बहुत अधिक मात्रा मे होता है एक बहुत पेचीदा प्रकार का प्रोटीन कोशिकाओं की न्यष्टि में पाया जाता है, न्यूक्लियो प्रोटीन। यह भी पाया गया है कि 'कैन्सर' कोशिकाय आक्सीजन के अभाव मे भी अपनी जीवनदायक ऊर्जा उत्पादन मे सक्षम होती है जैसे कि कोई कोशिका नही होती बल्कि उप-लब्ध होते हुए भी कई बार कैन्सर कोशिकाय आक्सीजन को ग्रहण करने से इनकार करती है। माइक्रोस्कोप के नीचे कैन्सर कोशिकायें न्यष्टि कि बाह्य रूप मे सामान्य कोशिकाओं से भिन्न होती हैं। वे अन्य कोशिकाओं के निर्माण हेतु तेजी से अपने आपको विभाजित करती रहती है और वे यह कोशिका विभाजन एक असामान्य ढग स करती है। छोट केन्द्रीय सूत्र जिनको क्रोमोसोम कहते है केन्द्रक के अन्दर अनियन्त्रित रूप से विभाजित होने लगते है। उन छोटे-छोटे अग्र भागो मे जिनको जीन्स बोला जाता है और जो धागो जैसे क्रोमोसोम के साथ-साथ स्थित होते है वह बुनियादी कारण ढूढा जाना चाहिए जो वृद्धि की विकृति का जिम्मेदार है और विकृत वृद्धि ही 'कैन्सर' है।

कैन्सर क्यो होता है ?

कोषो की गडबडी नव कोष उत्पादन पर मे नियन्त्रण समाप्त हो जाने से कैन्सर होता है। नव कोषो के निर्माण पर अन्त स्रावी स्रावो का और हैर्मोयुओं का नियन्त्रण बताया जाता है। किन्तु यह नियन्त्रण क्यो खो जाता है ? इसका कोई विज्ञान सम्मत प्रमाणिक जवाब नही मिल पाया है। ससार के अनेक देशो मे बहुत बड पैमाने पर अध्यवसायपूवक वैज्ञानिक ढग से खोज हो रही है। किन्तु विज्ञान के पास अभी तक इस प्रश्न का समुचित उत्तर नही है। जो अपूर्ण उत्तर इस प्रश्न के दिये जाते है उनमे स कुछ इस तरह स है—

(१) कोषो के अन्दर के रसो की गडबडी स
(२) हार्मोन्स के असन्तुलन से
(३) अधिक व निरन्तर धूम्रपान से फेफडो का कैन्सर
(४) प्रदूषित वातावरण म फेफडो का कैन्सर
(५) तम्बाकू वाला पान व चूना खाने वाले के जीभ गाल व होठो का कैन्सर
(६) सुलग हुए चुट्ट का जलता सिरा मुह मे रखकर पीने से तालू का कैन्सर
(७) कश्मीर मे कपडो के नीचे कागडी (अगीठी) लटकाये रखने से छाती पर कागडी कैन्सर
(८) किसी अङ्ग के निरन्तर उत्तेजित रहने से

(६) गुर्दे या पित्ताशय मे लम्बे समय तक पथरी रहने से

(१०)किसी आन्तरिक अङ्ग मे लगातार क्षोभ-कारक पदार्थ पहुंचने से, जैसे—मसाले, मिर्च, वगैरा।

पहचान—

दर्द, तकलीफ, पीड़ा, सारे शरीर पर प्रभाव, अकारण वजन कम होना, भूख न लगना, नींद न आना, निरन्तर थकावट महसूस करना। किसी जगह घाव हो जाना और चिकित्सा से न भरना। खासी का जल्दी ठीक न होना, बार-बार होना। बलगम मे खून आना, महिलाओ के सीने मे एक या अधिक गाठे बनना, चुचुक से रक्त आना, चुचुक का अन्दर खिच जाना।

मासिक धर्म मे अनियमितता, मासिक धर्म का बन्द होकर पुनः चालू हो जाना, बदबूदार स्राव करना। रजो निवृत्ति के बाद रज स्राव के रूप मे रक्त स्राव। मल और मूत्र मार्ग से रक्त आना, बार-बार कब्ज होना और दस्ते लगना। बरसो न बढ़ने वाले किसी तिलया मस्से का अचानक रग बदलने लगे या वह बढ़ने लगे।

कैन्सर शरीर के किसी भी अङ्ग में हो सकता है। शरीर पर कहीं भी, विशेषत. छाती पर वेदना रहित लक्षणों के दिखाई देने पर योग्य चिकित्सक को दिखाकर जांच अवश्य करानी चाहिए। थोडी सी लापरवाही मे यह खतरनाक बीमारी बन जाती है। यहां तक कि कोई छोटी चोट भी कैन्सर का रूप ले लेती है। अगर कैन्सर शुरू में पकड़ लिया जाये तो इसका उपचार सम्भव है। वैज्ञानिक इसकी खोज मे लगातार लगे हुए है।

कैन्सर के कुछ इलाज

आयुर्वेदिक चिकित्सा—

कैन्सर की रोकथाम मे आयुर्वेदिक व शल्य चिकित्सा किसी हद तक सफल हो रही है। 'भिलावा' नामक आयुर्वेदिक दवा से कई लोग ठीक हुए हैं। भिलावा ! यह इमली के बीज जैसी शक्ल वाला, लेकिन उससे काफी बडा एक फल होता है। यह हिमालय के कम ऊंचाई वाले इलाको, मध्य भारत और पश्चिमी घाट के इलाको मे पाया जाता है। भारत में यह पूर्वी द्वीपों और उत्तरी आस्ट्रेलिया मे पाया जाता है। धोबी इसमे सुई डुबाकर इसके रस से कपडो पर निशान बनाता है। बम्बई के डा० वाड ने भिलावा से दवाई तैयार की है। जिसका नाम एमाकार्डियम फोर्टे है। भिलावे के अन्दर 'कैन्सर' प्रतिरोधी तत्व पाए जाते है। यह 'कैन्सर' जन्य तकलीफो मे राहत पहुँचाता है। और 'कैन्सर' रोगियों की जीवन अवधि बढाता है। जीभ, होठ गाल, टोन्सिल और गले के 'कैन्सर' में यह ज्यादा उपयोगी सिद्ध हुआ है। 'हीरक भस्म' आयुर्वेदिक दवा भी 'कैन्सर' के लिए लाभकारी है। अमेरिका में इस दवा से ७५% स्तन 'कैन्सर'

व ६०% गर्भाशय ग्रीवा के 'कैन्सर' पर सफलता प्राप्त की है।

शल्य चिकित्सा —

कैन्सर की रोकथाम में शल्य-चिकित्सा भी सफल हो रही है। रेडियम थरैपी कोबाल्ट थरैपी कीमो थरैपी से भी 'कैन्सर' का इलाज होता है। और इसमें चिकित्सकों ने सफलता भी प्राप्त की है। जीन चिकित्सा, जिसके लिए डा० खुराना को नोबल पुरस्कार मिला है, 'कैन्सर' के इलाज के लिए सफल हुई है कैलिफोर्निया विश्व विद्यालय के वैज्ञानिकों ने पहली बार पशुओं में जीन हस्तांतरित किए है। इस विधि से आनुवांशिक रोगों पर काबू पाया जा सकेगा तथा पशुओं में वांछित जीन प्रविष्ट कराये जा सकेंगे। एक सामान्य औषधि मैथांड्रेक्सेड' रसौलियों को नष्ट करती है। 'हाइपर थरमिया' शरीर के सारे रक्त को गर्म करके 'कैन्सर' कोशिकाओं को मारने की इस विधि से 'कैन्सर' से की अन्तिम अवस्था तक के रोगियों का उपचार किया जा सकता है। 'बीटाट्रान चिकित्सा' यह उपकरण कोबाल्ट किरण से कहीं अधिक कारगर है यह हमारे देश में क्रिश्चियन मेडिकल कालेज वेल्लूर (तमिलनाडू) में है। यह आवश्यकतानुसार एक्स किरणें भी उत्पन्न कर सकता है। यह उपकरण सीधे ही इलेक्ट्रान उत्पन्न करता है जिससे शरीर की कैन्सर ग्रस्त कोशिकाओं का प्रत्यक्ष उपचार किया जा सकता है। (४.२ करोड़ इलेक्ट्रान वोल्ट) का यह उपकरण असाध्य समझी जाने वाली रसौलियों के इलाज में भी सफलता पा चुका है। यह केवल कैन्सर ग्रस्त कोशिकाओं को ही नष्ट करता है।

शीघ्र माता से कैन्सर मुक्ति—

एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि जो महिलाएं बीस वर्ष की आयु के पहले ही गर्भ धारण कर लेती है उनमें छाती के 'कैन्सर' की सम्भावनायें अत्यधिक कम हो जाती है।

गर्भावस्था में गर्भाशय में बढ़ रहे शिशु के शरीर की कोशिकायें मां को ट्यूमर से प्रतिरक्षित कर देती है। बच्चे के शरीर की कोशिकायें ट्यूमर कोशिकाओं के समान ही होती है। परन्तु उनमें ट्यूमर कोशिकाओं को नष्ट करने वाली कोशिकाओं को उत्पन्न करने की क्षमता होती है।

ब्रिटेन के क्लीनिकल रिसर्च सेन्टर के अनुसन्धान कर्त्ताओं पी बी मेडावर और ग्लहन्ट ने चूहे में बच्चों की कोशिकाओं की प्रतिरक्षण प्रक्रिया का सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया है और सिद्ध किया है कि उन महिलाओं ने जिन्होंने पहला गर्भ ३३ वर्ष की आयु के पश्चात धारण किया उन महिलाओं की तुलना में जिन्होंने गर्भ धारण ही नहीं किया, छाती के 'कैन्सर' की सम्भावनायें अधिक होती हैं। परन्तु वे महिलायें जो कम उम्र में ही गर्भ धारण कर लेती हैं, उनमें छाती के 'कैन्सर' की सम्भावनायें कम हो जाती हैं।

❋ ❋ ❋

अन्तरिक्ष में प्रदूषण

प्रो० हरिश्चन्द्र ग्रोवर

नेजो मे प्रदूषित हो रहे पृथ्वी के ऊपरी वातावरण को बचाने से न रोका गया तो अन्तरिक्ष अनुसधान के क्षेत्र मे काम करने वाले वैज्ञानिकों को अन्तरिक्ष अनुसधान में परेशानिया पैदा होगी जिससे बुरे परिणाम सामने आ सकते है।

अन्तरिक्ष अनुसंधान के अनुसार आयनमण्डल के विषय मे अच्छा अध्ययन केवल भूमध्य रेखा के क्षेत्र मे ही किया जा सकता है। आयन मण्डल रेडियो सचार के लिए बनावटी उपग्रह से अधिक विश्वस्त उपकरण है, इस कारण यदि पृथ्वी के ऊपरी वातावरण मे मूल रूप से परिवर्तन हो गया तो दुनिया के देशों को जिनके पास सचार उपग्रह नही है कठिनाई का सामना करना पड सकता है।

पृथ्वी की भू समकालिक कक्ष में १९८० मे हो १०३ सैन्य उपग्रहो का प्रक्षेपण हो चुका है। यह उपग्रह दुश्मन देश की ओर घात लगाये घूम रहे हैं इतना ही नही, ये उपग्रह एक दूसरे को नष्ट करने की क्षमता भी रखते है।

आयन मण्डल हर प्रकार रेडियो तरगो से भरा है, इस आयल मण्डल का प्रयोग किसी भी देश या व्यक्ति द्वारा बुद्धिमानी से किया जाना चाहिए. इस प्रयोग के लिए इस आयन मण्डल की आवृति और सूर्य के साथ सम्बन्ध की अच्छी जानकारी होनी जरुरी है यदि यह जानकारी पर्याप्त नही है तो इस आयन मण्डल का सुचारु रूप से उपयोग नहीं किया जा सकता।

पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का एक स्थान से दूसरे स्थान पर मान बदलने के लिए सौर हवाए ही जिम्मेदार हैं। इसका एक मात्र कारण यह है कि सौर हवाये अपने साथ सूर्य से सक्रिय कण ला रही है ये कण पृथ्वी के वातावरण में छिद्र पैदा करते है दूसरी वस्तुओ को सचार व्यवस्था में बाधा पहुचाते हैं, इन सौर हवाओ से प्रभावित होने वाले आयन मण्डल के विषय में विस्तृत जानकारी आवश्यक है। ऊपरी वातावरण के इस परिवर्तन के साथ सौर हवाये पृथ्वी को जलवायु तथा मौसम मे गम्भीर परिवर्तन ला सकते हैं।

मानव निर्मित उपग्रह के ऊपर एक दैविक प्रकोप भी है जो कि इस सचार की व्यवस्था को निष्क्रिय बना सकता है। इस प्रभाव को जो इन उपग्रहों को निष्क्रिय कर सकता है, चुम्बकीय तूफान कहते हैं।

सौर हवाएं सूर्य से निकली हुई झूमती लपटें हैं, जिसके परिणाम स्वरूप चुम्बकीय तूफान पैदा होते हैं। चुम्बकीय तूफान की जानकारी से मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणी की जा सकती है इसके अतिरिक्त पृथ्वी के चुम्बकी क्षेत्र की तीव्रता एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न-भिन्न होने के कारण भी यह सौर लपटें ही हैं।

सौर हवाओं से प्राणी मात्र को सबसे बड़ी हानि यह है कि वातावरण में ओजोन गैस की तह में उन्ही सौर हवाओं के कारण बाधा हो रही है जिसके कारण अल्ट्रावायलेट किरणें पृथ्वी पर प्रवेश करती हैं इन किरणों की तरंग धैर्य कम तथा तीव्रता अधिक होती है। सूर्यग्रहण के समय मे ये किरणें ही पृथ्वी पर विशेष रूप से पड़ती है, इन अल्ट्रा किरणों से चमड़ी का कैंसर हो सकता है।

कैलशियम और फास्फोरस—कैलशियम हड्डी और दाँतों के लिए परमावश्यक पदार्थ है फास्फोरस हड्डी के निर्माण में सहयोग देता है, हड्डी और दांतों की मजबूती भी इन्ही पदार्थों से होती है। यह शरीर के कोशों को जीवन देते हैं। शिशुओं, गर्भवती, स्तनपान कराने वाली माताओं को अधिक कैलशियम की आवश्यकता होती है जिसकी कमी से दांत एवं हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं तथा बच्चों को रिकेट्स नामक रोग हो जाता है। दमा एवं चर्म रोग भी कैलशियम की कमी से होने वाले हैं। फास्फोरस की कमी से बालकों का विकास रुक जाता है, यह हमारे रक्त को साफ करता है।

पर्यावरण शिक्षा गीत—

पीपल और पर्यावरण

पीपल का यह वृक्ष, मित्र, इसको पहचानो,
गौतम हुए जहां बुद्ध उस मुकाम को जानों।
इसी वृक्ष की तो काया थी, इसी वृक्ष की छाया
जिसके नीचे गौतम ने प्रकाश था पाया।
और आज तुम काट रहे तन इन वृक्षों के,
जो चूसा करते हैं, आक्साइड[1] कार्बन के।
पत्ते इनके देते हैं अणु आक्सीजन[2] के,
दूषित वायु शुद्ध करे जो इस धरती पे।
इसी आक्सीजन को श्वासों में भरके,
मानव जीवन पलता आया है सदियों से।
गीता के श्री कृष्ण कहें वृक्षों में पीपल,
काया जिसकी आकर्षक, छाया है शीतल[3]।
अन्य वृक्ष भी साथ दे रहे हैं पीपल का,
पर्यावरण न दूषित होने पाये हमों का।
बढ़ती जनसंख्या मांगे ज्यादा आक्सीजन,
पूरी जिसको करे सिर्फ वृक्षों का जीवन।
तन्हा पीपल[4] का छोड़ रहा इतनी आक्सीजन,
लाखों लोगों का चलता है जिससे जीवन।
वृक्षों के महत्व को फारिग तुम पहचानों,
अब से आगे नहीं इन्हें काटोगे मानों॥

—फारिग
(वि०श०)

१—कार्बन डाइआक्साइड एवं मानोक्साइड। वायुमंडल मे इनकी सांद्रता एक सीमा मे अधिक हो जाने पर जीवन पर इनका दुष्प्रभाव पड़ने लगता है। वृक्ष इन्हें सोख कर वायुमण्डल में इनकी सान्द्रता कम बनाये रखते हैं।

२—आक्सोजन—हमारे जीवन के लिए आवश्यक गैस। इसकी सान्द्रता यदि वायुमण्डल में एक सीमा मे कम हो जाये तो जीना कठिन हो जाये। वृक्ष आक्सीजन छोड़कर पर्यावरण में आक्सोजन को उचित मात्रा बनाये रखते हैं

३—एक स्वस्थ वृक्ष प्रतिदिन उतना ही शीतलता प्रदान करता जितनी कि ५ एयर कन्डीशनर के एक दिन मे ५० घटे चलने पर।

४—पीपल का एक बड़ा वृक्ष २२५२ किलोग्राम दूषित कार्बन डाइआक्साइड वातावरण से सोखता है तथा उसके एवज में १७१३ किलो ग्राम आक्सीजन देता है जो ६ लाख व्यक्तियों के लिए पर्याप्त होती है।

After sun-drying, the beans are ready for market, and may be crushed into cocoa powder for drinking purposes, or mixed with sugar for chocolate-making.

What other parts of the Empire grow cocoa ?
What other cash crops could be grown with cocoa ?

Loading-up Sugar-cane, West Indies *From the Imperial Institute Collections, South Kensington*

28 LOADING-UP SUGAR-CANE, WEST INDIES

ALL the islands of the West Indies produce sugar from canes. In many cases this is the chief cash crop, whether it is grown on large plantations financed by wealthy foreigners or on the small farms of the natives, mainly negroes.

Throughout the islands the methods of cultivation are the same, excepting that in a few cases irrigation is necessary where the plantations are on the rain-shadow side of the mountains. The pieces of cane, cut so that each piece includes a "joint," are planted in a trench about one foot deep, covered with water and earthed over. From these pieces of cane grow the sugar plants to a height of about eight to ten feet.

Each plant will continue to produce for many years, but as it is found that the sugar-content begins to fall after the fifth year, it is usual to find one-fifth of a plantation being planted afresh each year.

The canes are cut down by workers using large knives called machetes, and loaded into carts similar to those shown in the picture. One mule can pull the loaded cart to the crushing mill, the other mule is there to give some help over the rough ground.

If the plantation is a large one it will have its own crushing mill, usually run by steam-power. The canes are crushed between heavy rollers to squeeze out the sugar juice, which may be passed on to a refinery, or shipped in its raw state to be refined in a distant factory in the U.S.A. or Great Britain.

The waste cane, called by the natives "trash," is fed into the fires that heat the steam boilers for working the factories.

Make a list of eight of the more important islands of the West Indies, and against each name put down two crops grown in that island other than sugar.

Which is likely to be the wetter side of these islands, and why?

29 COFFEE PLOT IN JAMAICA

THE largest British island in the West Indies group is Jamaica, which has been part of the Empire since 1655. During the eighteenth and early part of the nineteenth centuries it was very important because of its production of rum from the local sugar grown by slave labour.

The freeing of the slaves put a stop to a large part of this trade, and the standard of living amongst the native population is now rather low. There are nearly 900,000 people on this island of limestone, and over three-quarters of these are full-blooded negroes, and another one-fifth are coloured people with some negro blood in them.

Less than 15,000 of its people are white persons, and these are mainly concerned with the administration of the island, or are organizers of native work on the plantations.

Coffee Plot in Jamaica *From the Imperial Institute Collections South Kensington*

Most of the natives of the island make their living by agriculture, some by working their own small farms and others by working on white-owned plantations. The chief crops are banana, sugar-cane, coffee and pimento, or allspice.

Coffee grows well on hill slopes in warm regions where there is a good rainfall, and there are trees to shade the coffee plant from the direct rays of the sun. Our picture of a small coffee plot shows the plants arranged along a terraced slope. Note the taller trees and shrubs which provide the shade.

The settler's house is in the middle of the picture. Notice the wide roofed verandah, which prevents the sun shining directly into the room windows and helps to keep the house cool, and may often be used as an outside " room."

Kingston, the capital of Jamaica, acts as an entrepot for the near-by islands. What is an entrepot ?

What other cash crops are grown in Jamaica ?

30 LAKE OF PITCH, TRINIDAD

JUST off the north-east coast of Venezuela, not far from the mouth of the great Orinoco River, lies the island of Trinidad. In proportion to its population, Trinidad is the richest part of the West Indies, and this population is one of the most mixed, including negroes, Spaniards, Portuguese, Indians, East Indians and Chinese.

The chief crop of the island is cocoa, grown to the north-east, where the trade winds bring heavy rain. Sugar-cane, the second most important, is grown in the west, where the climate is drier and sunnier. Some of the sugar plantations are very well run, using modern machinery for both the cultivation and the refining of the sugar.

Other crops include coco-nuts (on the sandy coastlands of the north-east), coffee (on the hill slopes of the northern hill range), limes, oranges and grape-fruit.

The natural resource that brings most wealth to the island, although it doesn't employ a great number of people, is the lake of pitch in the south-west of the island. This lake

Lake of Pitch, Trinidad *From the Imperial Institute Collections, South Kensington*

is supplied from some underground source and is continually being refilled.

As the surface of the pitch is fairly firm, it is possible to lay lines for a light railway on it, but the lines must be re-laid within twenty-four hours or they will have disappeared. The workmen use pick-axes and shovels to get out the pitch, which is loaded into trucks and sent to the refinery whose chimneys you can see in the picture.

The refined tar is shipped in barrels, much of it coming to this country. I expect you have seen it being used to " asphalt " a road.

Port of Spain is the chief town and port of the island, but the Trinidad Lake and Asphalt Company have their own port to which the barrels travel direct, by overhead cables, to waiting ships.

How far north of the Equator is Trinidad ?

What steady wind blows across the island, and what effect will that have upon the climate ?

Section Three

HISTORICAL NOTES

A. BRITISH EMPIRE IN NORTH AMERICA

I—The Rise of Our Empire

THE story of our Empire in North and Central America begins in the fifteenth century. In those days English ships were very small judged by our standards to-day—five, ten or twenty tons. Their usual voyages were round the British coast, over to France, to the Low Countries, or to the Channel Islands or to Spain.

How the Map of the World was changed in 1492

Take a modern map of the world and cover up America, Central and South Africa, Australasia, and the Arctic and Antarctic regions. What is left of your map is the known world of the early fifteenth century. In such a world the British Isles were isolated on the edge of Europe.

The man who altered the map was Christopher Columbus. His story does not directly concern us here, but you will know already that in 1492 he braved the unknown Atlantic, and landed in the West Indies—which he called " Indies," because he thought he had discovered

islands off the east coast of Asia. His master was King Ferdinand of Spain, and so the first settlements which were made in Central America were those of Spaniards. They found a great deal of gold and soon conquered the native Aztecs, and were determined to keep others away from their new discoveries. England was anxious to keep on good terms with Spain, and so her first attempts to find new lands were made in directions where it was thought the Spaniards would not be.

In 1496 another Genoese, John Cabot, and his son Sebastian, came to Bristol. England's civil war was over, and the new king, Henry VII, was anxious to encourage trade, gain prestige for himself and make money. He had heard of Columbus's success, and willingly gave permission for Cabot to make a voyage. John went off in the "*Matthew*" with a crew of only eighteen men, and landed somewhere further north than Columbus—probably in Newfoundland or Labrador. No attempt was made to settle English colonists in this part, and the King was disappointed that the Cabots had not found gold. The true wealth of the new coast was in its wonderful cod-fishing.

The Growth of the Navy under the Tudors

Both the first two Tudor kings helped to prepare the way for England's first colonies by building up a strong navy. Henry VII constructed the first real dry dock at Portsmouth and built many ships. Henry VIII took a great interest in the Navy. More and more of England's foreign trade came under the control of Englishmen, and there were bigger and better ships to carry it on. To Englishmen it seemed that their best chance of finding a new part of the Indies, without sailing too near Spanish land, was to look for a passage to the north-east. An expedition set out under Chancellor and Willoughby. They did not reach the Indies, but Chancellor got as far as Archangel, went on overland to Moscow, and made a treaty with the Czar of Russia, Ivan the Terrible.

The Reign of Elizabeth, 1559-1603

In the reign of Queen Mary English merchants began to challenge Portugal's monopoly of trade with West Africa, and in the reign of Elizabeth this challenge was extended to Spanish rights in the West Indies. The man who took the lead in the war against Spain was Sir Francis Drake. One of his aims was to stop the sending of treasure from the Central American colonies back to Spain. He made many raids on settlements situated along the Atlantic Coastline and Carribean Sea.

The first Englishman to make a settlement in North America was Sir Humphrey Gilbert. In 1583 he was able to set out with five ships across the Atlantic, and reached Newfoundland. There a small settlement was made. On the return journey his ship sank with all hands.

But Gilbert's work was by no means lost. Sir Walter Raleigh went on with it. Early in 1584 Gilbert's brother, Adrian, set out on an expedition to the southern coast of East America, and gave a most favourable report. Raleigh established a colony there, naming it *Virginia.*

These new settlers had to face many dangers and difficulties. It was impossible to send them regular supplies from England, and the Indians were unfriendly. But their worst difficulties were those which they made themselves. They were greedy for gold and many of them were unwilling to work, or to keep any kind of discipline and order in their new home.

II—The Growth of the North American Colonies in the Seventeenth Century

(1) *Virginia*

From 1606 to 1612 was the worst period in the history of Virginia—a period known as " The Starving Times." Supplies of food were poor and scanty, and there were strange fevers and diseases and constant quarrels amongst the colonists. The planting of tobacco saved the colony. The fashion of smoking was growing in England. From 1612 onwards Virginia exported more and more tobacco, and so at last the colony began to prosper. By 1670 its population had become 40,000.

(2) " *New England* "

That most important part of our early empire—the New England colonies—grew up in a space of a comparatively few years. We must first see why, and then how they developed.

Some people went to North America for trade, others to find gold and make a quick fortune. Most of the " New Englanders " went because they wanted a space where they could live in freedom. They were nonconformists — that is, Protestants who did not agree or conform with the Anglican Church. Soon groups of them began to decide that it would be better to brave the journey across the Atlantic if America would give them a home in which they could worship freely.

The most famous of all these new settlers was the first group, the

"Pilgrim Fathers." In 1606 a number of nonconformists had taken refuge in Holland, and whilst there a few of them decided to go on to North America. Altogether one hundred and two persons—men, women and children—made the voyage across the Atlantic in one of the most famous of all ships, the "*Mayflower*." This was in 1620.

The Pilgrim Fathers were used to living a community life, and accustomed to trials and hardships were prepared to work hard. Their colony, *New Plymouth*, was ruled by a governor, elected annually by a free assembly, for the new colonists had a good idea of democratic government, and their relations with the Indians were most friendly.

The second new England colony, *Massachusetts*, began in 1629. These colonists founded the first college in the English colonies in America. This became later the great University of Harvard. But they expected everyone who lived in Massachusetts to agree to their religious rules, and some colonists felt they could not do this. A group under Roger Williams formed another colony—*Rhode Island*.

Two other of the New England colonies were also founded by dissatisfied groups from Massachusetts—*Connecticut* and *New Haven*. Settlements made in *Maine* and *New Hampshire* were gradually absorbed by Massachusetts. The New Hampshire Settlement, however, became a separate royal colony in 1679, but that of Maine remained a part of Massachusetts till 1820. *Maryland* (a colony north of Virginia), was founded by Lord Baltimore in 1634 and peopled mostly by Roman Catholics, although some Protestants were included. This colony soon prospered; it grew corn and tobacco.

By the end of the seventeenth century England had gained other parts of North America. As a result of her wars with Holland she gained the district between New England and Maryland, which the Dutch called *New Amsterdam*. Under English rule it was renamed *New York*, after Charles II's brother, the Duke of York. Towards the end of Charles II's reign William Penn founded a colony for members of the Society of Friends, or Quakers, on land he bought to the west of New York. This colony was called *Pennsylvania*, and its chief town was Philadelphia, the "city of brotherly love." Thus by 1700 almost the whole of the eastern coast of North America was part of the British Empire.

III—Wars with France in the Eighteenth Century

To the several settlements referred to on the previous pages must be added those made by the French, whose interest in the Western

World dates from the discovery of the St. Lawrence by Jacques Cartier in 1534, and the settlements at Quebec and Montreal (1608-1611) by Samuel de Champlain. By 1700 the French had colonies in Cape Breton Island, and in the district round Quebec and Montreal, and had begun to settle a district in the Mississippi Basin called Louisiana. They built a number of forts, and hoped thus to link up their different colonies. The English opposed this, as it would prevent them from moving inwards from the coast. So when war broke out between France and England it easily spread to America. By the Treaty of Utrecht, which ended the War of the Spanish Succession (1702-1713), France gave up Acadia (renamed Nova Scotia) to Britain. In 1745, during the War of the Austrian Succession (1740-1798), British troops captured the great French fortress of Louisbourg (on Cape Breton Island), but by the peace treaty of 1748 all conquests on both sides were restored, though ill-feeling continued.

The Seven Years' War (1756-1763) decided the fate of French North America, or as it is called to-day, Canada. The outstanding event was the capture of Quebec by General James Wolfe. Wolfe was a great soldier; the capture of Quebec a great and difficult task. He succeeded by a surprise attack. His men rowed up the river with muffled oars, in boats camouflaged with trees and boughs. Then they scaled the Heights of Abraham behind the city, and victory was theirs. Wolfe and the French General, Montcalm, were both killed.

In the treaty which ended this war England kept Canada, then only the district round Quebec and Montreal. Thus by 1763 she had a great Empire in North America. We have next to see how this old Empire came to an end, with the loss of the Eastern American colonies.

IV—The War of American Independence (1776-1783) and the Loss of the American Colonies

Since the beginning of the eighteenth century British colonists in North America had begun to feel that they had more and more cause for complaint against their Mother country. But the most important reasons for American discontent among colonists were concerned with the home government's attempt to enforce regulations on American trade. Moreover, in 1765 a Stamp Act was passed by the English Parliament, by which all public documents had to be stamped before they were legal. The money was to be the contribution of the colonies towards the upkeep of an army for colonial defence. Some Americans

began to feel that Parliament should not make laws for America. It became impossible to collect the Stamp duties, and so the now Prime Minister, Lord Rockingham, was forced to repeal the Act. But he very foolishly passed a Declaratory Act at the same time, which stated that Great Britain could tax America whenever she pleased. Soon after, Lord Townsend introduced taxes on tea, glass, paper and painters' colours. Again these were removed, and again the Government was tactless and kept the tax on tea. The result was the famous "Boston tea party." A group of colonists, disguised as Indians, boarded a ship of the East India Company which was laden with tea, and threw its cargo overboard. The British Government decided to make an example of the proud town of Boston and the colony of Massachusetts. It cancelled the Colony's Charter, and ordered Boston harbour to be closed. The Americans, for it is now more correct to call them that rather than colonists, acted rapidly. Except for Georgia, all the colonies sent representatives to a Congress which met at Philadelphia on 5th September, 1774. At the same time, an army was organized, and a little later on Thomas Jefferson drafted a "Declaration of Independence." The United States were formed, and they were to be free of all outside rule.

There had been minor skirmishes before, but the Declaration of Independence meant open war against Great Britain, a war which lasted from 1776 to 1783. At first the British Army was successful. Reinforcements arrived for the British, but instead of being a help the new army proved a disaster. It was surrounded by a greatly superior American force, and to save the lives of his men General Burgoyne surrendered at Saratoga in 1777.

France and Spain decided to help the Americans, and French troops under General Lafayette joined the American army of General George Washington. In 1781, however, the Americans won a great victory at Yorktown, and the war was really finished, though peace was not made for another two years.

The Peace of Versailles, which was made in 1783, marked the end of the first British Empire, the end of what is sometimes called the old or first Empire. The independence of the colonists was recognized and a new country was acknowledged a great power, the United States. Great Britain was financially exhausted, and for some years she took little interest in her overseas Empire. In North America this now consisted of a land which was undeveloped

and unpopulated (excepting the French population of Quebec and some forty thousand colonists who left the rebellious colonies). This, however, was the land which became in the next hundred years the great Dominion of Canada.

V—The Dominion of Canada, 1783-1944

We have next to see how Canada's natural wealth, her mines, forests, fisheries, agriculture and industries, and her form of government, have developed since 1783.

Development of North America

In 1783 the population of Canada was distributed among five provinces—the province of Lower Canada (with the old French city of Quebec as its capital), the province of Upper Canada (further to the west and south, along the shores of the Great Lakes), Nova Scotia, New Brunswick and Prince Edward Island. Because the population of the first-named province was almost wholly French and that of the other four provinces mainly British, Pitt's Canada Act of 1791 recognized two separate Canadas, Upper Canada and Lower Canada. Central Canada was practically unknown although Lord Selkirk, with a number of Scotch pioneers, made a settlement on Lake Manitoba in 1811. The northerly district was only slowly developing, under the Hudson Bay Company, which gained its wealth by bartering ready-made goods in return for furs which the Indians were willing to exchange. The English Company prospered, and even developed its own currency for trade with the Indians, paper money known as "Hudson Bay Blankets." In 1869 the Company's lands were taken over by the central government.

The western lands were also slowly explored, though they had to wait till the building of the Canadian Pacific Railway before their proper development began. In 1793 Sir Alexander Mackenzie made the first crossing of North America. Some of the Western Indians were friendly and offered the white men presents. In 1808 Simon Fraser made the first descent of the river which now bears his name.

How Canada became a Dominion

From 1774 to 1791 Canada was a Crown Colony, that is, the country was ruled by the British Government at home. In 1791, as we have seen, Canada was separated into two provinces, Upper and Lower Canada, each with its own assembly, which could raise taxes and pass laws subject to the approval of the Governor and Council, though the actual government of the country was still carried on by the British

Government in London. New cities, including Ontario, grew up, and the first of the great Canadian shipping lines was founded by Samuel Cunard of Halifax.

Some Canadians, especially French Canadians, were beginning to dislike being ruled by a government in Great Britain. There was open rebellion in 1837, and as a result the British Government sent out Lord Durham to find out why Canadians were discontented and to suggest improvements. He was made Governor-General of all the provinces of British North America, and suggested that Canada should be allowed to govern herself and have a parliament like that of Great Britain. The result of Durham's famous Report of 1839 was not all that he hoped, though in 1840, by the Reunion Act, all the country was re-united except for Newfoundland and the maritime provinces. But Canada did not reach the position Durham had desired for her till 1867, when the British North America Act was passed. This established Canada as a Dominion, consisting of the four provinces of Quebec, Ontario, New Brunswick and Nova Scotia.

How Canada is Governed To-day

Before going any further with the story of Canada, it is a good plan to see how Canadian government works to-day. Canada has a Parliament of two Houses, a Senate and a House of Commons. In the latter, M.P.s are elected. In the former, Senators are nominated and remain members for life. (Compare this with the British House of Lords.) Parliament meets at Ottawa in Parliament House. Queen Victoria chose this town as capital in 1858, when it was only a small place of 24,000 inhabitants. Canada is joined to the rest of the Empire by her allegiance to the King-Emperor, who is represented by a Governor-General. But she is a fully-grown member of the British Commonwealth, and so free to do as she wishes in foreign policy and internal affairs.

How Canada grew after 1867

If you look at a map of the modern Dominion of Canada, you will see that it includes far more than the original provinces. This is because after 1867 all the rest of British North America (except for Alaska, which belongs to the U.S.A., and Newfoundland) gradually came to be included in the Dominion. This was completed in 1905, when Alberta and Saskatchewan were admitted. One of the most important additions was made in 1871, when British Columbia joined the Dominion. A glance at the map shows that this province is a long way from the prosperous eastern provinces. Yet it could

produce many things which the shipping lines needed for export, and the great industrial towns of the east also wanted timber and fish and furs, for example. The problem was how to get these products to the east, and so British Columbia joined the Dominion in 1871 on the condition that within the next ten years a trans-continental railway should be built. The result was the building of the famous Canadian Pacific Railway.

Newfoundland

One part of North America has remained separate—the Dominion of Newfoundland, which has had its own responsible government since 1855. Its territory includes Labrador, and its chief wealth is in its shipping and cod-fishing. It is, of course, a much smaller Dominion than Canada, and did not have a separate representative in the League of Nations.

The Canadian Pacific Railway, 1887

The Canadian Pacific Railway was one of the greatest of modern enterprises. Think what it means—to cut your way across an entire continent. Before the railway, the chief means of communication had been by canoe, or in winter by dog-sledges. For some years progress on the line was slow. Then a company was formed; the Dominion Government gave it as much wood as it wanted, and a grant of twenty-five million dollars. After ten years the railway was completed in 1885. The first train to go right through was covered with Jubilee decorations, for the year was 1887. Two men who gave this enterprise their determined support were Sir John Macdonald, Prime Minister of Canada, and Donald Smith (later Lord Strathmore).

Development of the Prairies and of the West

The building of the Canadian Pacific Railway was one great reason for the development of Central and Southern Canada. The second was the fact that in the middle of the nineteenth century Canada's population was greatly increased by a great flow of emigrants from Great Britain and other parts of Europe. These emigrants from Britain came chiefly because social conditions were bad in the home country and there was much unemployment. So they hoped to find new homes and fortunes in a new land. Another reason was the improvement in merchant shipping. By the 1880's it was possible for the raw materials which Canada produced to be exported in increasingly large quantities. Thus people were encouraged to settle in the areas which produced them.

British Columbia was the province which perhaps benefited most from the building of the railway, for it enabled new settlers to find new homes there, and salmon, timber and furs to be sent to the eastern provinces and to Europe. A fairly recent addition was the planting of apple orchards, which have made Canadian apples world-famous.

The short rushing rivers of Canada have become a marvellous source of water-power, and so now much of Canada's industry and domestic work is done by electricity. Other natural reasons which encouraged the development of the West have been the finding of gold in the Rocky Mountains and the development of lumbering.

At the same time the prairie lands of Central Canada also developed. This development was helped by the suitable climate and by the discovery of new kinds of wheat. Increasing populations in Europe meant an increased demand for this most important Canadian product. The three prairie provinces were eventually admitted to the Dominion—Manitoba in 1870, and Saskatchewan and Alberta in 1905.

Canada and the Great War, 1914-1918

In the Great War of 1914-1918 Canada, like the rest of the British Empire, came to the help of the Mother country and her allies. The first Canadian troops arrived in England as early as October, 1914. In Europe they fought gallantly, and by the end of the war there were more than 400,000 Canadian soldiers in France. The great Vimy Ridge monument stands to their memory.

Canada and the other parts of the Empire ; Ottawa Conference

In the late 1920's Great Britain, like other parts of Europe and America, went through a time of depression and financial hardship. Parts of the Empire suffered as well, for it was difficult for them to find markets for their goods. So in 1932 there met in Canada representatives from all parts of the Empire, for a Conference at Ottawa. The members decided on a policy of " Imperial preference "—that is, trade between different parts of the Empire was to be more encouraged than trade with foreign countries. Empire goods were not to pay such heavy duties. Shops in Great Britain had little notices asking people to " Buy British." As Canada has many new materials which she can exchange for manufactured goods, it was a very important step for her and, of course, for the whole Empire.

Canada and the Second German War, 1939

When Great Britain went to war with Germany again in September, 1939, the various parts of the Empire again came to her aid. Almost immediately Canadian soldiers came to England, and have since taken a great part in the outstanding events of the war—in France, in Norway and in Italy. The Royal Canadian Navy has been enlarged and Canadian destroyers play an important part in keeping open the Atlantic lifeline in the war against the U-boats. The Canadian Merchant Navy has also increased in size. One of the most important contributions which Canada has made to the war effort has been the part she has played in the Empire training scheme for the Air Force. Flying schools have been built in the Dominion, and young airmen of all nationalities train there.

Canada has also helped the war in other ways. She has built prison camps for prisoners of war and received a large number of interned enemy aliens. In the early days, when invasion of the British Isles seemed all too likely, she welcomed large numbers of British children. Financially, the Canadian Government has been helped by subscriptions to Canadian war loan. Economically, Canada has sent Great Britain a generous supply of raw materials of all kinds; British ships have been refitted in Canadian harbours, and British people fed with Canadian cheese, fish and wheat.

Conclusion

Like the rest of the Empire, Canada benefited under the Statute of Westminster of 1931, which placed all Dominions on equal terms with Great Britain. The second German War has more closely connected even than before the parts of the Empire or, more correctly, the British Commonwealth, and many Canadians have stated the need for this co-operation to continue afterwards. There is little doubt that Canada will remain a great member of the British Commonwealth of Nations.

B. BRITISH EMPIRE IN THE WEST INDIES

An important part of our Empire is in Central America—the West Indies. The Spaniards were the first to reach these islands; in fact, it was on an island of the Bahama Group that Columbus landed. Many

of the islands remained Spanish until the beginning of the nineteenth century, when they declared themselves independent.

From the British point of view, our West Indian possessions have a double importance. They are strategic air and naval bases and they provide a number of valuable raw products, of which the chief are sugar, oils, cocoa, bananas and, in the case of Trinidad, asphalt.

Our contact with the West Indies began in the days of Elizabeth, when Drake and Hawkins made raids on Spanish bases there. British settlements were first made in Barbados and St. Christopher, but the early settlers suffered terrible hardships from the climate, strange diseases and the raids of the terrible Carib cannibal Indians. A great gain was the occupation of Jamaica in 1655, and during the late seventeenth century and the eighteenth our settlements began to prosper. More and more sugar plantations were made and a class of wealthy planters grew up, who relied for their labour on African slaves brought over in large "slavers." The slave trade was a wealthy business, and many merchants and shippers profited by it. There is no doubt that hundreds of slaves lived lives of utter misery, for it was cheaper to replace a slave when he or she died than to look after him carefully. At last people in England began to realize what had happened, and in 1833 the trade in slaves was abolished. By this time, Great Britain's possessions in the West Indies had greatly increased—as a result of her wars with France. By the Treaty of Vienna of 1815 she kept these additions, including St. Lucia, Trinidad, and Tobago.

Unlike Canada, the West Indies have not a Dominion form of government. They represent two different types of political development. In those islands which are the most advanced, e.g., the Bahamas and Barbados, there is a governor who is the ultimate ruler. He is helped by an Assembly, which makes laws and which represents the peoples of the islands, but he can overrule it. In the less politically-developed islands, e.g., Trinidad, there is a governor, but not a representative assembly. The aim of the British Commonwealth is, of course, to so educate the peoples of these islands that they will soon be able to govern themselves.

APPENDIX

Text of Declaration signed by Empire Prime Ministers at the close of their London Conference on 16th May, 1944 :—

We, the King's Prime Ministers of the United Kingdom, Canada, Australia, New Zealand and South Africa, have now, for the first time since the outbreak of the war, been able to meet together to discuss common problems and future plans.

The representatives of India at the War Cabinet and the Prime Minister of Southern Rhodesia have joined in our deliberations and are united with us.

At this memorable meeting, in the fifth year of the war, we give thanks for deliverance from the worst perils which have menaced us in the course of this long and terrible struggle against tyranny.

Though hard and bitter battles lie ahead, we now see before us, in the ever-growing might of the forces of the United Nations, and in the defeats already inflicted on the foe by land, by sea and in the air the sure presage of our future victory.

Until Freedom

To all our armed forces who in many lands are preserving our liberties with their lives, and to the peoples of all our countries whose efforts, fortitude and conviction have sustained the struggle, we express our admiration and gratitude.

We honour the famous deeds of the Forces of the United States and of Soviet Russia, and pay our tribute to the fighting tenacity of the many States and nations joined with us.

We remember, indeed, the prolonged, stubborn resistance of China, the first to be attacked by the authors of world-aggression, and we rejoice in the unquenchable spirit of our comrades in every country still in the grip of the enemy.

We shall not turn from the conflict till they are restored to freedom. Not one who marches with us shall be abandoned.

We have examined the part which the British Empire and Commonwealth of Nations should bear against Germany and Japan, in harmony with our Allies. We are in cordial agreement with the general plans which have been laid before us.

Holding Nothing Back

As in the days when we stood all alone against Germany, we affirm our inflexible and unwearying resolve to continue in the general war

with the utmost of our strength until the defeat and downfall of our cruel, barbarous foes has been accomplished.

We shall hold back nothing to reach the goal and bring to the speediest end the agony of mankind.

We have also examined together the principles which determine our foreign policies, and their application to current problems. Here, too, we are in complete agreement.

We are unitedly resolved to continue, shoulder to shoulder with our Allies, all needful exertions which will aid our Fleets, Armies and Air Forces during the war, and thereafter to make sure of an enduring peace.

We trust and pray that the victory, which will certainly be won, will carry with it a sense of hope and freedom for all the world.

The Good of All

It is our aim that, when the storms and passions of war have passed away, all countries now overrun by the enemy shall be free to decide for themselves their future form of democratic government.

Mutual respect and honest conduct between nations is our chief desire. We are determined to work with all peace-loving peoples in order that tyranny and aggression shall be removed or, if need be, struck down wherever it raises its head.

The peoples of the British Empire and Commonwealth of Nations willingly make their sacrifices to the common cause.

We seek no advantages for ourselves at the cost of others. We desire the welfare and social advance of all nations and that they may help each other to better and broader days.

We affirm that after the war a World Organization to maintain peace and security should be set up and endowed with the necessary power and authority to prevent aggression and violence.

Our Common Burden

In a world torn by strife, we have met here in unity. That unity finds its strength, not in any formal bond, but in the hidden springs from which human action flows.

We rejoice in our inheritance of loyalties and ideals, and proclaim our sense of kinship to one another. Our system of free association has enables us, each and all, to claim a full share of the common burden.

Although spread across the globe, we have stood together through the stresses of two World Wars, and have been welded the stronger thereby.

We believe that when victory is won and peace returns, this same free association, this inherent unity of purpose, will make us able to do further service to mankind.